ऋषि प्रसाद

सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी बापू

द्विमासिक वर्ष : १ सितम्बर-अक्तूबर १९९१ अंक : २

ऋषि प्रसाद

सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

वर्ष : १

अंक : २

सितम्बर – अक्तूबर १९९१

तंत्री : के. आर. पटेल

शुल्क वार्षिक	: रु. २२
त्रिवार्षिक	: रु. ६०
विदेश में वार्षिक	: US $ २२ (डालर)
त्रिवार्षिक	: US $ ६० (डालर)

* कार्यालय *

'ऋषि प्रसाद'

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.
फोन : ४८६३१०, ४८६७०२

विदेश में शुल्क भरने का पता :

International Yog Vedanta Seva Samiti
8 Willams Crest,
Park Ridge, N.J. 07656 U.S.A.
Phone : (201) - 930 - 9195

टाईपसेटींग : फोटोटेक्स्ट, अहमदाबाद।
प्रकाशक तथा मुद्रक : श्री के. आर. पटेल, श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, मोटेरा, अहमदाबाद-३८० ००५ ने अंकुर ऑफसेट, गोमतीपुर, अहमदाबाद में छापकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' हर दो महीने में ९ वीं दिनांक तक प्रकाशित होता है।

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिः
अगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्ट्य सुदत्रो विदधातु रायो,
अनु मार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम्॥

'हम ब्रह्मवर्चस् से, दूध से तथा माधुर्य से युक्त बनें। बलिष्ठ शरीर धारण करें। कल्याणकारी मन से युक्त बनें। परम दाता, जगत-नियन्ता परमेश्वर हम को धन, सुख और आरोग्य-ऐश्वर्य प्रदान करें। हमारे शरीर का जो त्रुटिपूर्ण अंग है उसे वे स्वस्थ करें।'

(यजुर्वेद : २.२८)

हमें अपना सर्वांगीण विकास करना है। हमारा तन तंदुरुस्त हो, मन कल्याण-चिंतक हो, सत्त्वशीलता हमारे जीवन में प्रविष्ट हो और हम ब्रह्मतेज से प्रदीप्त होवें। षोड़षों कलाओं से खिल आये चाँद की धवल चाँदनी-सा शुभ्र एवं तेजस्वी जीवन हम जियें।

महर्षि विश्वामित्रजी ने कहा था कि **'ब्रह्मतेजो बलं बलम्।'** वास्तव में ब्रह्मबल ही बल है। आत्मबल ही वास्तविक बल है। हममें ब्रह्मवर्चस्वी आत्मतेज का प्रकाश हो। आत्मबल से युक्त क्षुद्र कायावाला व्यक्ति बड़े-बड़े महारथियों को भी झुका देता है। राजा-महाराजे, धनी-निर्धन, मूर्ख व विद्वान सभी आत्मबल संपन्न ब्रह्मविद् के चरणों में गौरवपूर्वक नत-मस्तक होकर अपने को भाग्यशाली मानते हैं। हमें अब ऐसा पुरुषार्थ करना है कि हम ब्रह्मतेज से युक्त होकर प्रकाशित हों।

हमें पयस् भी प्राप्त हो। तन की तंदुरुस्ती के लिए दूध उत्तम पेय है। यदि शरीर बलिष्ठ रखना हो तो हमारा आहार शुद्ध, आरोग्यप्रद और अप्रमादी होना चाहिये। तंदुरुस्त तन के लिए मन भी तंदुरुस्त चाहिये। हमारे मन में माधुर्य, शांति, निर्मलता, निष्कपटता, सरलता, उदारता, मधुरवाणी, यत्नशीलता आदि गुण भी विकसित करना चाहिये। हमारा मन शुष्क न बने। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय, पाँचों शरीरों का सर्वांगीण विकास हो। हमारा मन कल्याणकारी संकल्पों से युक्त बने। **'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'**

कल्याणदायी एवं आनंददायक संकल्प करते ही मन उत्कर्ष के मार्ग पर जाता है।

मन ही मित्र है और मन ही शत्रु है। मन पर विजय हांसिल की तो पाँचों शरीरों का समुचित विकास होगा और वायुमंडल में भी कल्याणदायी सद्विचार प्रसारित कर स्वकल्याण साध सकेंगे।

प्राणीमात्र के परम हितैषी परमात्मा उदार दानी हैं। उनका कला-कौशल्य जग-प्रसिद्ध है। प्रत्यक्ष

दृष्टिगोचर भी होता है। पानी की बूँद में से सचराचर विश्व कैसे रचते हैं? परमात्मा सबको शुभ, कल्याणकारी दान करते ही रहते हैं। हमें भी धन, सुख, आरोग्यता, शुभ गुण, दिव्य सद्भावों का दान दें। हमारे लिए तो आत्मतेज ही सबसे बड़ा ऐश्वर्य है। हमें आत्मतेज का दान दीजिये।

हमारे शरीर का कोई अंग त्रुटिपूर्ण हो तो उसे परिमार्जित कीजिये। हमारे कान अशुभ सुनते हों, आँखें अपवित्र देखती हों, जिह्वा अपवित्र भाषण करती हो, हाथ दुष्क्रिया करते हों, पैर दुर्गमन करते हों तो उनको परिमार्जित कर शुभ-मार्ग, परमात्म-पथ पर अग्रसर करें। हमारे सारे कार्य, विचार और वाणी को शुद्ध बनायें जिससे कि हम भी आप जैसे बनकर आप में ही मिल जाएँ।

'देवो भूत्वा देवं यजेत्।'

(अनु. पृष्ठ ८ से जारी...)

में हाजिर हैं। यह तन-मन आज से आपका हो गया। हे गुरुदेव! इसका स्वीकार करो।"

ऐसा कहते ही पुष्पों की वृष्टि की। आकाशचारी सिद्धों ने 'साधु! साधु!' कहते हुए वशिष्ठ मुनि पर फूलों की वृष्टि की। जिन्होंने आत्म-शांति का महत्त्व जाना वे बुद्धिमान गंधर्व और किन्नर भी मुनि शार्दूल को प्रणाम करने लगे।

दुनिया में बहुत से लोग इज्जतवाले, बलवाले, सत्तावाले होते हैं परंतु आत्मबल, आत्मसत्ता, आत्मविश्रांति सर्वोपरि है। हर इज्जतवाले से ऊँची इज्जत होती है वशिष्ठ जैसे आत्मसाक्षात्कारी पुरुषों की, वेद व्यास जैसे ब्रह्मवेत्ताओं की। जो भी ब्रह्मवेत्ता हों, चाहे भगवान दत्तात्रेय हों, श्रीकृष्ण हों, जनक, गार्गी या सुलभा हो, उनका ऊँचे से ऊँचा मान होता है। क्योंकि ऊँचे में ऊँचा पद आत्मपद है। उस आत्मपद का उपदेश देकर लोगों के चित्त में विश्रांति दिलानेवाले मुनिश्रेष्ठ पर सब गंधर्व, किन्नर और आकाशचारी सिद्धों ने फूलों की वृष्टि की और वशिष्ठ मुनि का यशोगान करने लगे।

दुंदुभियाँ, नगाड़े, शहनाइयाँ आदि गुंजने लगे। जब सब शांत हुए तब वशिष्ठजी महाराज जो कि पुष्पों से ढक गये थे, उन्होंने अपने हाथों से पुष्पों को हटाया। महर्षि ने राजा दशरथ की ओर निहारा और कहा : "राजन्! तुम धन्य हो! तुम जगे हो। तुमने मुझे राज्य अर्पण किया है। मैं तुम्हें अपना ही मानता हूँ। तुम मेरे हो गये तो यह राज्य भी मेरा ही हो गया और तुम्हारे यह चार पुत्र मेरे शिष्य हैं, मेरे पुत्र ही हैं। मैं यह राज्य तुम्हें लौटाता हूँ। ब्राह्मण भला कभी राज्य करते हैं? राज्य तो क्षत्रिय ही करते हैं और वही शोभा देता है। ब्राह्मण तो आत्म-राज्य में तृप्त रहता है। हे दशरथ! तुम यह मेरा राज्य प्रसाद के रूप में स्वीकार करो और जो कुछ वैभव तुमने मुझे अर्पण किया है उसे मेरा ही समझो, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय उसका सदुपयोग करो। मेरे उपदेश से सत्य स्वरूप में तुम टिक जाओ।"

धन्य हैं ऐसे आत्मारामी गुरुदेव जो बंधन से छुड़ाते हैं। धनभागी हैं उनको पहचाननेवाले सत्शिष्य! आत्मारामी गुरुओं को और उनको पहचाननेवाले साधकों की... सत्शिष्यों की जय!

सर्वत्र सुख है भर रहा, तब दुःख कहाँ से आयगा। सुख रूप शिव है आप तू, तब सुख कहाँ से लायगा॥
सुख-चाह तेरी ढक दिया, सुख-सिंधु आपना आप है। तू आप पीछे हो गया, कहलाय यह ही पाप है॥
पुरुषार्थ करते धीर जो, निश्चय परम सुख पाय है। आलस्य करते मूढ़ जो, पछताय मर-मर जाय है॥
आलस्य मत कीजे कभी, सर्वत्र सुख ही देखिये। दूजा कहीं है ही नहीं, मत दुःख कहीं भी देखिये॥

गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर पू. बापू का अमृत-सन्देश

[दिनांक : २६-७-९१ अहमदाबाद आश्रम]

तीन प्रकार के गुरु होते हैं : देव गुरु, सिद्ध गुरु और मानव गुरु। देव गुरु देवताओं के लिए ही होते हैं, जैसे बृहस्पति आदि। अत्यंत कठिनाई में कहीं कोई व्यक्ति पड़ा है और वह सच्चा उत्तम साधक है तो सिद्ध गुरु उसके आगे प्रकट होकर मार्गदर्शन देते हैं और अंतर्धान हो जाते हैं। साधक की जिम्मेदारी हो जाती है कि वह उनके द्वारा बताये गये रास्ते पर स्वयं ही चलता रहे।

मानव तन में ही जन्म लेकर इसी लौकिक जगत में रहते हुए ही साधना और गुरुप्रसाद के बल से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि छः विकारों को कुचलते हुए, सद्गुरुओं के प्रसाद को पचाते हुए जो गुरुपद को पाते हैं, उन्हें हम मानव गुरु कहते हैं। मानवगुरु मनुष्यजाति के साथ जीते हैं, मनुष्यजाति के साथ हँसते हैं, खेलते हैं, मनुष्य जाति की कठिनाइयाँ जानते हैं और मनुष्य को प्रलोभन कैसे गिराते हैं, उन सारे अनुभवों से वे गुजरे हुए होते हैं। गुरुपद में स्थित ऐसे मानव गुरु जब मिल जाएँ तो साधकों का और शिष्यों का आसानी से कल्याण होने लगता है। मानव गुरुओं के सांनिध्य से मनुष्य का हृदय विशाल होने लगता है। मनुष्य में निर्भीकता, शांति का प्रसाद, प्रेम और आनंद का संचार होने लगता है। घृणा, ईर्ष्या और द्वेष कम होने लगते हैं। क्षमा, उदारता, शौर्य, साहस और सत्यवृत्ति बढ़ने लगती है। सात्त्विक कर्मों से स्थूल शरीर की शुद्धि होती है और भीतर के आनंद को विकसित करने से आनंदमय कोष की शुद्धि होकर परम आनंद में पहुँचने का सामर्थ्य आता है। मानव शरीर में जो गुरु मिल जाते हैं वे साधक से सत्कर्म करवाकर उसके तन की शुद्धि तथा कर्मों की योग्यता बढ़ाते हैं और ध्यान कराते-कराते आनंद का प्रसाद बरसाते हुए उसके आनंदमय कोष को विकसित करते हैं ताकि वह परमानंद का साक्षात्कार करके मुक्त हो जाय।

गुरु साधक से सत्कर्म करवाकर उसके तन की शुद्धि तथा कर्मों की योग्यता बढ़ाते हैं और ध्यान कराते-कराते आनंद का प्रसाद बरसाते हुए उसके आनंदमय कोष को विकसित करते हैं ताकि वह परमानंद का साक्षात्कार करके मुक्त हो जाय।

जिसके पास सच्चरित्र नहीं है वह बाहर से भले बड़ा आदमी कहा जाय परंतु उसे अंदर की शान्ति नहीं मिलेगी एवं उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं होगा। जिसके पास धन, सत्ता कम है परंतु सच्चारित्र्यबल है उसे अभी चाहे कोई जानता, पहचानता या मानता न हो परंतु उसके हृदय में जो शान्ति रहेगी, आनंद रहेगा, ज्ञान रहेगा वह अपूर्व होगा और भविष्य परब्रह्म परमात्मा के साक्षात्कार से उज्ज्वल होगा।

धनबल, जनबल, सत्ताबल ये सारे के सारे बल सच्चारित्र्यबल के आगे प्रतिहत हो जाते हैं। जितने अंश में सच्चारित्र्यबल है उतने अंश में ही धनबल,

सत्ताबल और दूसरे बल तुम्हारी ओर आकर्षित होते हैं। विश्व में सच्चारित्र्य का आदर होता है, पूजन होता है। जितना जितना चारित्र्य को उन्नत करते जाओगे उतने तुम तो उन्नत होते जाओगे, तुम्हारे संग में आनेवाले भी उन्नत होते जाएँगे। किसी भी मूल्य पर अपने संग को मलीन मत होने देना। सावधान रहना। जैसे शत्रु तुम्हारे दुषित कर्मों पर निगरानी रखता है ऐसे ही तुम अपने दुषित कर्मों पर निगरानी रखो। जैसे सद्‌गुरु तुम्हारे सच्चरित्र बढ़ाने की चेष्टा करते हैं ऐसे ही तुम अपना सच्चरित्र बढ़ाने में तत्पर रहोगे तो सद्‌गुरु तुमसे दूर नहीं रहेंगे और तुम उनसे दूर नहीं रहोगे।

सेवा में तीन बातें होनी चाहिए : श्रद्धा, सेवा करने की तत्परता और सेव्य के हित की भावना। श्रद्धा रहित सेवा मजदूरी हो जाती है।

गुरु की सेवा क्या है? **'आज्ञा सम नहीं साहब सेवा।'** सेवा में तीन बातें होनी चाहिए : श्रद्धा, सेवा करने की तत्परता और सेव्य के हित की भावना। श्रद्धा रहित सेवा मजदूरी हो जाती है। श्रद्धा हो, तत्परता हो और जिनकी सेवा करते हो उनके हित की भावना हो। हित की भावना से तुम इतने ऊँचे उठ जाओगे कि सेव्य के हृदय में भी तुम्हारे हित की भावना जोर पकड़ेगी।

सत्पुरुषों का, सद्‌गुरुओं का हृदय कैसा होता है उसका बयान करने की शक्ति मेरी जिह्वा में नहीं है। उनको नापना किसीके बस की बात नहीं है।

गुरुजी घूमने निकले थे। किसी एक जगह पर बैठनेवाले थे जहाँ पर प्रतिदिन ही बैठते थे। उस जगह के पास एक जंगली पौधा था जिसे बिच्छू कहते हैं। उसके पत्तों को अगर हाथ लग जाय तो बिच्छू काटे वैसी पीड़ा होती है।

"हे गुरुदेव! ईश्वर ने तो हमें संसार में भेजा काम, क्रोध सहित लेकिन आपने निष्कामी बनाया और क्रोध से छुड़ाया। ईश्वर ने तो कर्मों के बंधन में भेजा परंतु गुरुदेव! आपने उन कर्मबंधनों को काट दिया। प्रकृति ने तो बंधन बनाये लेकिन गुरुदेव! आपने हमारे लिए मोक्ष बनाया!"

मैंने सोचा : गुरुजी आएँगे और बैठेंगे। यह बिच्छू का पौधा, जो बढ़ा हुआ है, शायद गुरुदेव के चरणों को या हाथों को छू जायगा तो गुरुदेव के शरीर में पीड़ा होगी।

मैंने श्रद्धा और उत्साह भरकर सावधानी से उस पौधे को मूल से खींचकर फेंक दिया। गुरुजी ने दूर से देखा और जोरों से मुझे डाँटा : "यह क्या करता है?"

"गुरुजी! यह बिच्छू है, कहीं लग न जाय।"

भूतमात्र के परम हितैषी, प्रत्येक जीव के कल्याण का ध्यान रखनेवाले गुरुजी ने करुणा से भरकर दयार्द्र कोमल वाणी में कहा : "बेटा! मैं रोज यहाँ बैठता हूँ, संभलकर बैठता हूँ। इसमें भी प्राण हैं। इसको क्यों कष्ट देना?"

कैसा महापुरुषों का, सद्‌गुरुओं का हृदय है!

वैष्णवजन तो तेने कहीए जे पीड़ पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे॥

जिसको छूने से बिच्छू काटने जैसी पीड़ा होती है, जिस पौधे के पास गुरुजी हररोज बैठते हैं, वहाँ से उस पौधे को मैंने निकाला तो गुरुजी ने मुझे अच्छी तरह डाँटा। डाँट में करुणा तो थी ही, ज्ञान भी था। अभी तक मुझे वह याद है। मैंने गुरुदेव के हित की भावना से वह काम किया था परंतु... हमारी हित-साधन वृत्ति से भी किसी को पीड़ा हो ऐसा काम हमारे हाथ से नहीं होना चाहिए।

गुरुदेव ने कहा : "जा, कहीं पर गड्ढा खोदकर इस पौधे को लगा दे।"

मैं जब पौधा लगाकर वापस आया तब गुरुजी ने पूछा : "क्या, लगा दिया?"

"हाँ।"

"अच्छा बेटा, आगे ध्यान रखना।"

इन 'ध्यान रखना' शब्दों में इतनी करुणा थी कि अब बिच्छू के पौधे का ध्यान तो क्या, जो भी मेरे सामने आ जाता है उसका ध्यान रखने का भाव गुरुकृपा से बन जाता है। गुरुजी के शब्द तो दो ही थे मगर उनके पीछे जो करुणा और प्रेरणा छुपी हुई थी उसका कोई नाप-तौल नहीं कर सकता।

कभी–कभी जब एकांत में गुरु की कृपा का, उदारता का, सूक्ष्म दृष्टि का स्मरण होता है तो हृदय कह उठता है :

"हे गुरुदेव! ईश्वर ने तो हमें संसार में भेजा काम, क्रोध सहित लेकिन आपने निष्कामी बनाया और क्रोध से छुड़ाया। ईश्वर ने तो कर्मों के बंधन में भेजा परंतु गुरुदेव! आपने उन कर्मबंधनों को काट दिया। प्रकृति ने तो बंधन बनाये लेकिन गुरुदेव! आपने हमारे लिए मोक्ष बनाया। संसार ने ये चिंताएँ दी लेकिन आपने हमें आनंद दिया। कुटुंबी-संबंधियों ने हमारे लिए जिम्मेदारियाँ बनाईं मगर आपने हमें सारी जिम्मेदारियों से पार कर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिति दिला दी। हे मेरे गुरुदेव! प्रकृति ने जन्म-मरण बनाया, परंतु आपने तो मोक्ष बनाकर हमारा कल्याण ही कर दिया। हजार हजार जन्मों के माता-पिता हमें जो चीज न दे पाये, लाखों-लाखों मित्र हमें जो चीज न दे पाये, करोड़ों-करोड़ों जन्मों के परिश्रम से जो चीज हमें न मिल पाई, हे गुरुदेव! आपके मानसिक सांनिध्य से, आपकी शारीरिक निकटता से और बौद्धिक प्रेरणा से वह चीज हमें मिली है। अब हमें इन्द्र का पद भी छोटा लगता है। गुरु महाराज! आपके चरणों में कोटि कोटि प्रणाम हों। आप जहाँ भी, जिस रूप में भी हमारा जैसा भी उपयोग करना चाहें, यह तन, मन, बुद्धि आपके हवाले हैं। फिर-फिर से आपके चरणों में हजारों प्रणाम हो।"

मन ही मन सत्‌शिष्य अपने सद्‌गुरु की अर्घ्य-पाद्य से पूजा करता है। हजारों मील दूर बैठा हुआ भी सत्‌शिष्य सद्‌गुरु की पूजा करके प्रेरणा-प्रसाद पाने में सक्षम होता है। आध्यात्मिक जगत अत्यंत ओजस्वी-तेजस्वी है। भौतिक जगत के आविष्कार मन करता है। मन से परे बुद्धि है, बुद्धि से परे जीव है, जीव से परे चिदावली है और चिदावली से परे वह शुद्ध चैतन्य गुरुतत्त्व है। वह अत्यंत सूक्ष्म है। कोई वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है उतनी वह व्यापक होती है। अनंत ब्रह्मांडों में वह चिद्‌घन चैतन्य परमेश्वर तत्त्व व्यापक है। उसमें व्यासजी जैसे, वशिष्ठेजी जैसे, आद्य शंकराचार्य जैसे, कबीर-नानक जैसे, कई नामी-अनामी ब्रह्मवेत्ता पुरुष स्थित हुए हैं। उन पुरुषों की प्रसन्नता, उन पुरुषों का उदार प्रसाद पाने का संकल्प करना और उस रास्ते पर आगे बढ़ना गुरुपूर्णिमा का संदेश है। जिन्होंने अपने आत्मा को ब्रह्मरूप से पहचान

जिन्होंने अपने आत्मा को ब्रह्मरूप से पहचान लिया हो, जिन्होंने जीव-ब्रह्म के बीच का भेद मिटाकर स्वस्वरूप में विश्रांति पाई हो, ऐसे पुरुषों का मिलना दुर्लभ है और ऐसे दुर्लभ पुरुष जब मिल जायें तो सत्पात्र सत्‌शिष्य से उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त किये बिना रहा नहीं जाता।

"हे मुनीश्वर! आपने जो दिशा दी है, आपने जो शांति का प्रसाद हमें दिया है, उसके बदले में देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

लिया हो, जिन्होंने जीव-ब्रह्म के बीच का भेद मिटाकर स्वस्वरूप में विश्रांति पाई हो, ऐसे पुरुषों का मिलना दुर्लभ है और ऐसे दुर्लभ पुरुष जब मिल जायें तो सत्पात्र सत्‌शिष्य से उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त किये बिना रहा नहीं जाता।

"आपकी कृपा का, आपके उस प्रसाद का बदला चुकाने में तो मैं सक्षम नहीं हूँ, मगर कृतघ्न न रह जाऊँ इसलिए यह नश्वर तुच्छ चीजें आपको अर्पित करने की चेष्टा करता हूँ।"

वशिष्ठ मुनि के चरणों में महाराज दशरथ प्रणाम करते हैं। आँखों में हर्ष के, धन्यवाद के आंसू भरे हैं। गुरु-प्रसाद के द्वारा जो शांति, ज्ञान, जीवन की सही दृष्टि प्राप्त हुई उससे धन्यता का अनुभव करते हुए भगवान राम के पिता दशरथ गद्‌गद् कण्ठ से मुनि शार्दूल वशिष्ठजी से कहते हैं : "हे मुनीश्वर! आपने जो दिशा दी है, आपने जो शांति का प्रसाद हमें दिया है, उसके बदले में देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। हे गुरुदेव! मेरे पास जो कुछ भी है वह नश्वर है और आपने मुझे शाश्वत का संगीत दिया है। मेरे पास जो भी है वह मिटनेवाला है और आपने मुझे अमिट का अनुभव कराया है। गुरुदेव! आप नाराज न होना, इन्कार न करना, मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करना। हे भगवान्! आपके कृपा-प्रसाद से मैंने जो कुछ पाया है वह असीम है और मेरे पास जो है वह ससीम है। चारों द्वीपों का राज्य, राज्य-लक्ष्मी, मेरे चारों पुत्र और मैंने जो सत्कार्य, सत्पुण्य किये उसकी पुण्यप्राप्ति और यश के लिए जो कार्य किये वे सब मैं आपके चरणों में अर्पित करता हूँ। फिर भी आपकी कृपा का, आपके उस प्रसाद का बदला चुकाने में तो मैं सक्षम नहीं हूँ, मगर कृतघ्न न रह जाऊँ इसलिए यह नश्वर तुच्छ चीजें आपको अर्पित करने की चेष्टा करता हूँ। राजपाट आदि जो छोड़कर मरने की चीजें हैं वे अछूट आत्मा के बदले में मैं अर्पण करूँ यह मेरी नादानी तो है, परंतु आपके चरणों में कुछ अर्पण किये बिना रहा नहीं जाता।"

"आप हमें अमृत-प्रसाद दिये बिना रह न पाये, हम पर ऐसी कृपा की, जिसका बयान वाणी नहीं कर सकती। उसके बदले में नहीं परंतु अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए... कृतघ्नता का दोष न लगे एवं आपका प्रसाद मेरे चित्त में स्थिर रहे इसलिए हे मुनीश्वर! मेरा यह राजपाट मैं आपके चरणों में अर्पण करता हूँ।"

"मैं आपके चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि आपका ज्ञान, आपका आध्यात्मिक प्रसाद अधिकाधिक फलता फूलता-बढ़ता रहे और हम सरीखे उजाड़ अंतःकरणों में आपके कृपा-प्रसाद की फूलवाड़ी महकती रहे।"

"मैं आपके चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि आपका ज्ञान, आपका आध्यात्मिक प्रसाद अत्याधिक फलता-फूलता-बढ़ता रहे और हम सरीखे उजाड़ अंतःकरणों में आपके कृपा-प्रसाद की फूलवाड़ी महकती रहे।"

"मैं जैसा तैसा हूँ, आपका बालक हूँ। आपने मुझे गले लगाया है, उपदेश और कृपादृष्टि से अपने हृदय से मेरे हृदय को मिलाया है। मैं आपका सत्पात्र शिष्य, आपके उपदेश से सत्पद में स्थित रहूँ और आपके सत्पद, सद्‌ज्ञान का प्रसाद मुझे और मेरे परिवार एवं राज्य के लोगों को प्राप्त होता रहे। हमारे हृदय में आपकी कृपा फलती-फूलती रहे, आपका अनुभव हमारा अनुभव बनता रहे, इसलिए मेरा पुत्र, परिवार, राज्य, दास-दासियाँ सब आपकी सेवा

(अनु. पृष्ठ ४ पर)

गीता - अमृत

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज

अभ्यास में अपार शक्ति होती है। अभ्यास इस बात का करना है कि मित्र और शत्रु में जो चेतन चमक रहा है उसका बार-बार स्मरण होता रहे। आज जो असाध्य है, वही अभ्यास-बल से सरल और सुगम हो सकता है।

किसी संत ने एक ऐसा आदमी देखा जो अपने दोनों हाथों से विशालकाय भैंसे को उठा लेता था। संत ने उससे पूछा :

"कहाँ तू पाँच - साढ़े पाँच फुट का हल्का - फुल्का आदमी और कहाँ वह विशालकाय भैंसा! फिर भी तू अपने हाथों पर उसे ऐसे कैसे उठा लेता है?"

वह आदमी कहता है: "बाबाजी! सच मानिये, यह भैंसा जब पैदा हुआ था तो अत्यन्त छोटा और प्यारा-प्यारा-सा था। तभी से मैं इसे अपने दोनों हाथों से उठाता आया हूँ। नित्य अभ्यास से आज वह विशालकाय भैंसा मेरे लिये सहज हो गया। भले ही आज आपकी दृष्टि में विशालकाय बना दिख रहा हो पर मेरे लिए तो वह जन्मजात प्यारा और छोटा-सा ही लगता है। भले ही उसको उठा लेना औरों के लिए बड़ा चमत्कार का काम बन जाय।"

इसे ही कहते हैं अभ्यास की बलिहारी!

जब आप सायकल चलाना सीख रहे थे, उस समय यदि सोच लिए होते कि आप नहीं चला पायेंगे या गिर जायेंगे तो क्या आप कुशल सायकल सवार बन पाते? सायकल चलाना सीखते वक्त आप शरीर को मोड़ते - झकझोरते हैं, कभी गिरते हैं, छोटी-मोटी चोट भी खा लेते हैं। आखिर सायकल चलाना सीख ही जाते हैं। फिर तो स्कूटर भी चला लेते हैं, कार भी चला लेते हैं। यह सब अभ्यास का ही तो प्रभाव है।

अभ्यास-बल से दुबला-पतला आदमी भी विशालकाय लोहे की मशीनें चला लेता है, लकड़ी की अनेकानेक वस्तुएँ एवं गृहोपयोगी उपकरण बना लेता है, नौका को पानी में दौड़ा लेता है, हवाई जहाज को हवा में उड़ा लेता है। अभ्यास में ऐसी अपार शक्ति है तो आप इस अभ्यास के द्वारा अपने मन को मनोवांछित दिशा क्यों नहीं प्रदान करते हैं? मन तो हमारा आपका अपना है, गुलाम है। जब लोहे, लकड़ी एवं सभी भौतिक वस्तुएँ आपके एक इशारे की कायल हैं, तब तो मन पर वश पा लेना आपके लिए अत्यधिक सहज बन जाना चाहिए। ईश्वरीय सृष्टि में हमें दस दासियों के साथ एक मुनीम हमारे हवाले किया गया है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ... ये दस हमारी दस दासियाँ हैं। इन दस दासियों को चलाने वाला मुनीम मन है। मन रूपी मुनीम से हम गलत काम कराने लगेंगे तो वह हमारे सिर पर चढ़ बैठेगा।

किसी सेठ को उसके मुनीम ने कहा :

"सेठजी! तुम मुझे दुकान से आज निकालते तो हो, मगर इतना अवश्य याद रखना, मैं निकलूँगा तो तुम भी

निकल जाओगे। मैं तुम्हारा सारा भंडाफोड़ कर दूँगा।"

मुनीम की डाँप-डपट का फल यह हुआ कि सेठ ने मुनीम को काम पर रख लिया। सेठ को पता था इन्कमटैक्स के सारे चौपड़े इसने लिखे हैं, इसे राई-रत्ति का पता है। इसे एक नंबर, दो नंबर के हिसाबों की फाइलों का पता है, इसे पता है कि बिलवाले या बिना बिल के हिसाब कहाँ हैं? सेठ चुप्पी लगा बैठ गया। मुनीम को दुकान पर चालू रखा।

इतिहास में यह बात बड़ी मुश्किल से देखने में आती है कि किसीने भगवान से दुःख ही माँगा हो, कठिनाइयाँ ही माँगी हो। कुंती ने तपस्या माँगी कठिनाइयाँ माँगी।

हम जब मुनीम से गलत काम कराने बैठते हैं तो मुनीम, मुनीम नहीं रहता, वह सेवक नहीं रहता बल्कि एकाएक सेवक से स्वामी बन जाता है। और, स्वामी को विवश होकर उसका सेवक बनना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार आपका मन है तो आपका मुनीम, किन्तु आपने अपने मन से नित्य गलत काम ले-लेकर उसे अपने दुर्गुणों से परिचित करा-कराकर उसे ढीठ बना दिया है, निरंकुश बना दिया है। अब वह आपका कहा नहीं मानता, जैसा चाहे करता है और जिधर चाहे आपको नाच नचाता है।

हकीकत में मन को निरंकुश नहीं छोड़ना चाहिए। उसे अपने वश में रखना चाहिए। लेकिन मन से हमने अनधिकार चेष्टाएं करवाकर उसको इतना उच्छृंखल बना दिया है कि अब वह हमें जहाँ ले जाय वहाँ जाना ही पड़ता है। मन जो न कराये कम है। वह जो भी कराये हमें विवश होकर करना ही पड़ता है। वह जो भी विचारे विचारना ही पडता हैं। वह जिसे अच्छा कहे, बुरा कहे, अच्छा-बुरा स्वीकार करके चलना ही पड़ता है। अपने इस आचरण से ऐसा लगता है कि वास्तव में हम हम न रहे, हमने स्वयं को ही खो दिया है और हम की जगह मन ने ले लिया है। मन ही हमारे ऊपर अपना आधिपत्य जमाये हुए राज्य कर रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन कहता है :

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

'हे श्रीकृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है। इसलिये उसका वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ।'

दर्शन शास्त्र का एक सिद्धांत है कि शास्त्रार्थ में प्रश्नार्थी की बातों को सर्वप्रथम स्वीकार कर लो। सफल वकील भी इसी किमियाँ को अख्तियार करते हैं और अपने मुवक्किल के प्रतिवादी और उसके वकील की बात से सहमत हो जाते हैं और फिर उसके ही उत्तरों का सहारा लेकर बहस या जिरह में उसीको पराजित कर देते हैं, उसीके उत्तरों से तर्कों–वितर्कों के द्वारा अपनी मनचाही मनवाने को विवश कर देते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण प्रथम तो अर्जुन के मत से सहमति प्रकट करते हैं : "अर्जुन ! तू कहता है कि मन को जीतना अत्यन्त दुष्कर है, तेरा यह कथन सत्य है।" तत्पश्चात् अर्जुन की प्रकृति को उद्दीप्त करते हैं।

कभी-कभी विशेष लक्ष-प्राप्ति के लिए सामान्य शक्तियाँ निष्फल प्रतीत होती हों तो मनुष्य की अंतर्निहित विशेष शक्ति को सम्बोधन के द्वारा जगानी पड़ती है। यदि किसी कंजूस से दान करवाना हो तो कदापि उससे यह न कहें कि 'ऐ मख्खीचूस ! यह क्या देता है?' उससे तो चाहे अनचाहे यही कहना पड़ता है : 'हे परोपकारमूर्ति ! हे दाताओं में शिरोमणि ! अमुक दाता ने तो एक हजार एक सौ एक लिखवाया है मगर आपको तो पाँच हजार लिखवाना ही पड़ेगा।' आपकी बात से खुश होकर वह कम-से-कम ग्यारह सौ एक तो लिखवाएगा ही।

मनोवैज्ञानिकों का दावा है कि आप जैसा संबोधन करेंगे, व्यक्ति की मनोवृत्तियाँ भी वैसा ही स्वरूप ग्रहण करना प्रारंभ कर देंगी। भगवान श्रीकृष्ण तो मनोवैज्ञानिकों के मनोवैज्ञानिक हैं। वे कहते हैं :

असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम्।

हे लम्बी भुजाओं वाले ! मनको जीतना अति दुष्कर

तो है। तेरी बात स्वीकार तो है लेकिन...

अभ्यासेन तु कौन्तेय...

'हे कुन्तीपुत्र ! देख, तेरी माँ कितनी त्यागी है !'

इतिहास में यह बात बड़ी मुश्किल से देखने में आती है कि किसीने भगवान से दुःख ही माँगा हो, कठिनाइयाँ ही माँगी हो। कुंती ने तपस्या माँगी, कठिनाइयाँ माँगी।

भगवान ने कहा : "तू कुन्तीपुत्र है।" उसे कौन्तेय कहकर उसकी माँ के त्याग और वैराग्य की स्मृति कराई और कहा :

अभ्यासेन तु कौन्तेय
वैराग्येण च गृह्यते।

अभ्यास और वैराग्य से यह मन वश में होता है। जो आदमी अभ्यास नहीं करते और वैराग्य रखते हैं, उनका वैराग्य उन्माद-सा बन जाता है, उच्छृंखलता का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। अतः जीवन में अभ्यास का होना अवश्यम्भावी है।

अभ्यास और वैराग्य से यह मन वश में होता है। जो आदमी अभ्यास नहीं करते और वैराग्य रखते हैं, उनका वैराग्य उन्माद-सा बन जाता है, उच्छृंखलता का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

कृषक बिना किसानी किए ही यदि फसल काटने की इच्छा करे तो आप उसे क्या कहेंगे? ऐसे अभ्यास के बिना जो जीवन में वैराग्य धारण करना चाहें, वे वैराग्य का ठीक-ठीक आस्वाद ग्रहण नहीं कर सकते। वैराग्य का भी अपना स्वाद, सामर्थ्य और योग्यता है मगर वह अभ्यास करने के बाद आता है।

ऐसे कई साधू होते हैं जिन्हें पहनने को कपड़ा नहीं, रहने को झोंपड़ा, खाने के लिए कोई संग्रह नहीं। कौपीन पहनकर वे गंगा-किनारे पड़े हैं। पानी पीने के लिए तुम्बा तक नहीं रखते, इतना वैराग्य ! प्यास लगती है तो हाथ से ही गंगाजल पी लेते हैं। हाथ में ही रोटी लेकर खा लेते हैं।

ऐसा वैराग्य होने पर भी उन साधुओं के जीवन में अभ्यास नहीं है तो उनमें बेवकूफी आ गई है। वे लोग धनवानों को देखेंगे, पढ़े-लिखे लोगों को, वकीलों को, सेठ-साहूकारों को देखेंगे तो कहेंगे : "ये संसार के कुत्ते हैं। हम तो अपने पास कुछ नहीं रखते। हम तो त्यागी हैं। ये लोग सब भोगी हैं..." इस प्रकार उन भोगियों का ही चिन्तन करते-करते अपने त्याग का अहं बढ़ाते रहते हैं। वे न इधर के रहते हैं न उधर के।

वैराग्य होना तो अच्छा है, लेकिन वैराग्य बुद्धि और समझपूर्वक का होना चाहिए। समझ आती है सत्संग से।

*

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात ते सिल पर परत निसान॥

अभ्यास ही गुरु है। तुम कठिन से कठिन अभ्यास करो, साधना का अभ्यास करो तो तुम अपने साध्य तक पहुँच जाओगे। अन्यथा, गुरु तुम पर दया करके यदि कोई चमत्कार भी कर दिखायें और तुम्हें समाधि-दशा में भी पहुँचा दें, पर अभ्यास के अभाव में तुम उसका सत्फल नहीं प्राप्त कर सकोगे और तुम्हारी स्थिति त्रिशंकू की भाँति बन सकती है। अतः गुरु - उपदेश को श्रवण करने के लिए सदैव तत्पर रहो। गुरु - आश्रय में रहकर योगाभ्यास करनेवाला शिष्य विविध विघ्न - बाधाओं से निर्भीक रहता है। जो भी संकट साधना-यात्रा में आते हैं, उन्हें सहर्ष पार कर जाता है।

'भक्तमाल' के रचयिता नाभाजी एक बार दर्शनार्थ संत तुलसीदासजी के यहाँ जा पहुँचे। उस समय तुलसीदासजी समाधि-दशा में स्थिर थे, लीन थे। नाभाजी ने दूर से ही देख लिया कि संत चित्त, इन्द्रिय और मन से विरक्त हो इस समय परब्रह्म परमात्मा के ध्यान में निमग्न हैं। मेरे कारण उनकी समाधि में विक्षेप पड़े, यह ठीक नहीं। मेरी वजह से उनका ध्यान-भंग हो सर्वथा अनुचित है, यह सोच नाभाजी उल्टे पाँव अपने कुटीर की ओर लौट गये। ध्यान खुलने पर संत तुलसीदासजी को अन्य भक्तों ने बताया कि संत नाभाजी पधारे थे, पर आपको समाधिस्थ देख बिना मिले ही लौट गये।

संतों का हृदय अत्यन्त मृदु होता है, अहंकारशून्य होता है । मैं बड़ा हूँ या छोटा हूँ यह स्मृति उन्हें विचलित नहीं बनाती। बड़ा या छोटा तो देहाध्यास से हुआ जाता है। भगवद्भाव में बड़प्पन-छुटपन नहीं होता। जो भगवान के पथ के पथिक होते हैं वे संतों को अत्यन्त प्यारे लगते हैं। तुलसीदासजी को हुआ कि चलो उनके ही दर्शन करने चलें।

तुलसीदासजी तत्क्षण नाभाजी के दर्शन को निकल पड़े। उन दिनों नाभाजी के यहाँ संत-सम्मेलन चल रहा था। अच्छे प्रतिष्ठित संत, भक्त हरिचर्चा करते, सुनते, हरिध्यानमग्न रहा

करते थे। तुलसीदासजी जब वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि संतों के लिए भंडारा चल रहा है। सारा प्रांगण संत-समूह से आच्छन्न है। सभी के सम्मुख पत्तलें बँट चुकी थीं, अब पूड़ी बाँटने का क्रम चल रहा था। पूड़ी बाँटनेवाले ने सामने पत्तल न देख तुलसीदासजी के हाथों में ही पूड़ियाँ पकड़ा दीं। इतने में खीर परोसनेवाला भी आ प्रस्तुत हुआ। खीर लेने के लिए तुलसीदासजी के पास कुल्हड़ तो था नहीं, उन्होंने झट एक संत का जूता उठाकर खीर के लिए प्रस्तुत कर दिया और खीर परोसने के लिए कहा । खीर परोसनेवाले ने प्रतिवाद किया कि तुम शकल से तो साधु जान पड़ते हो और चमड़े के जूते में खीर माँग रहे हो? सुनते ही तुलसीदासजी के मुख से निकल पडा :

तुलसी जाके मुखन से धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मेरे तन को चाम॥

"जिसके मुँह से धोखे से भी राम का नाम निकलता हो, भगवद्भजन का स्वर फूटता हो अथवा जो भगवान का भक्त हो उसके चरणों का जूता भी मेरे अपने शरीर की चमड़ी की भाँति शुद्ध है, प्रिय है।"

इस घटना की चर्चा नाभाजी के कानों तक पहुँची। सुनते ही नाभाजी दौड़ते हुए तुलसीदासजी के पास जा पहुँचे। अत्यंत समीप जाकर -- 'अरे ! तुलसीदासजी महाराज...' और आगे अभी कण्ठ से उद्गार निकले कि दोनों ने एक दूसरे को गले लगा लिया। नाभाजी की

(अनु. पृष्ठ २८ पर)

> **"पचासों वर्ष की निष्काम भक्ति से भी हृदय का अज्ञान दूर नहीं होता है। हृदय भावना से तो भरता है, लेकिन हृदय का आवरण भंग नहीं होता। तुम्हारे जैसे ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुषों के एक मुहूर्त के सत्समागम से हृदय का अज्ञान दूर हो जाता है। इसलिए मुझे चरण धोने दो।"**

'पीड़ पराई जाने रे...'

अपने आसपास में देखें, शायद अपने से कोई ज्यादा दुःखी दीन हो। अपने पास दो रोटियाँ हों और वह बिल्कुल भूखा हो तो एकाध रोटी उसे दे दें। उससे शायद हमें थोड़ा भूखा रहना पड़ेगा, मगर वह बाहर की भूख अंदर में तृप्ति देगी। गाँव में कोई गरीब हो, व्यसनी और दुराचारी न हो, दुःखी हो तो उसकी सेवा करना, उसकी सहायता करना, इससे अन्तर्यामी परमात्मा प्रसन्न रहता है।

प्रसंग-कथा

अपना पेट भरने के लिए तो कुत्ता भी पूँछ हिला देता है, इसमें क्या बड़ी बात है? कौआ भी काँ-काँ कर लेता है।

वैष्णवजन तो तेने रे कहिये,
जे पीड़ पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे तोये
मन अभिमान न आणे रे ॥

रविशंकर महाराज दुष्काल के समय में गाँव-गाँव जाकर गरीब कुटुम्बों में अनाज और गुड़ का वितरण कर रहे थे। वे एक किसान के घर पहुँचे। बारह तेरह साल की लड़की बाहर आई। उससे पूछा—"घर में कोई नहीं है?"

लड़की बोली—"मेरी माँ मजदूरी करने खेत में गई है और मेरे पिता का दो साल हुए स्वर्गवास हो गया है।"

रविशंकर महाराज बोले—"ले बेटा, यह गुड़ ले ले।"

उनको हुआ, यह विधवा का घर है। दूसरों को देते हैं उससे जरा ज्यादा इनको देना चाहिए।

मगर वह लड़की कहती है—"हमें नहीं चाहिए।"

"क्यों?"

"मेरी माँ बताती है कि हमने मेहनत न की हो ऐसा किसीका मुफ्त नहीं लेना चाहिए। हराम का खाने से बुद्धि कुण्ठित होकर हलके विचार करती है।"

"तेरी माँ मजदूरी ही करती है कि और कुछ है तुम्हारे पास?"

"हमारे पास चार बीघा जमीन थी। मगर गाँव में पानी की बहुत कमी थी तो मेरी माँ ने जमीन बेचकर गाँव में पानी का कुँआ खुदवाया; जिससे कि गाँववालों को सुविधा से पानी मिल सके। अब मेरी माँ मेहनत करती है। हमें गुड़ नहीं चाहिए।"

यह संस्कृति अब भी भारत के गाँवों में है और यही भारत की आध्यात्मिकता के दर्शन कराती है।

परहित में अपना दे देने में देर न करें। मगर मुफ्त का, दान का लेने में संकोच करें।

*

सत्यनिष्ठा

डॉ. राजेन्द्रबाबू वकालत करते थे। उनके पास एक निराधार विधवा के विरुद्ध एक अभियोग-पत्र दाखिल किया गया। एक व्यक्ति ने उस विधवा से उसका सारा उत्तराधिकार हथिया लेने के लिए सुबूत के रूप में विविध प्रमाण राजेन्द्रबाबू के सामने प्रस्तुत किया और कहने लगा : "यही सब सुबूत हैं मेरे, अब आप इनके आधार पर एक-दो मुद्दतों में ही यह केस हमारे पक्ष में जितवा दें।"

राजेन्द्रबाबू ने कहा : "आपके सुबूत को देखते हुए आपकी धारणा सच है। वह आदमी मर चुका है, मानता हूँ। यह भी अच्छा है कि तुमने उसकी विधवा से धोखेधड़ी से अंगूठे का निशान भी प्राप्त कर लिया है। तू इस समय मेरा मुवक्किल है। मैं तुझे जीत दिला दूँ तो तू मुझे दो हजार रुपये फीस भी देगा ही जानता हूँ, मगर उस निराधार की रोटी छीनी जाएगी यह सोच मैं यह मुकदमा नहीं ले सकता। मुझे दो-चार

'पीड़ पराई जाने रे...'

अपने आसपास में देखें, शायद अपने से कोई ज्यादा दुःखी दीन हो। अपने पास दो रोटियाँ हों और वह बिल्कुल भूखा हो तो एकाध रोटी उसे दे दें। उससे शायद हमें थोड़ा भूखा रहना पड़ेगा, मगर वह बाहर की भूख अंदर में तृप्ति देगी। गाँव में कोई गरीब हो, व्यसनी और दुराचारी न हो, दुःखी हो तो उसकी सेवा करना, उसकी सहायता करना, इससे अन्तर्यामी परमात्मा प्रसन्न रहता है।

प्रसंग-कथा

अपना पेट भरने के लिए तो कुत्ता भी पूँछ हिला देता है, इसमें क्या बड़ी बात है? कौआ भी काँ-काँ कर लेता है।

वैष्णवजन तो तेने रे कहिये,
जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये
मन अभिमान न आणे रे ॥

रविशंकर महाराज दुष्काल के समय में गाँव-गाँव जाकर गरीब कुटुम्बों में अनाज और गुड़ का वितरण कर रहे थे। वे एक किसान के घर पहुँचे। बारह तेरह साल की लड़की बाहर आई। उससे पूछा–"घर में कोई नहीं है?"

लड़की बोली–"मेरी माँ मजदूरी करने खेत में गई है और मेरे पिता का दो साल हुए स्वर्गवास हो गया है।"

रविशंकर महाराज बोले–"ले बेटा, यह गुड़ ले ले।"

उनको हुआ, यह विधवा का घर है। दूसरों को देते हैं उससे जरा ज्यादा इनको देना चाहिए।

मगर वह लड़की कहती है–"हमें नहीं चाहिए।"

"क्यों?"

"मेरी माँ बताती है कि हमने मेहनत न की हो ऐसा किसीका मुफ्त नहीं लेना चाहिए। हराम का खाने से बुद्धि कुण्ठित होकर हलके विचार करती है।"

"तेरी माँ मजदूरी ही करती है कि और कुछ है तुम्हारे पास?"

"हमारे पास चार बीघा जमीन थी। मगर गाँव में पानी की बहुत कमी थी तो मेरी माँ ने जमीन बेचकर गाँव में पानी का कुँआ खुदवाया; जिससे कि गाँववालों को सुविधा से पानी मिल सके। अब मेरी माँ मेहनत करती है। हमें गुड़ नहीं चाहिए।"

यह संस्कृति अब भी भारत के गाँवों में है और यही भारत की आध्यात्मिकता के दर्शन कराती है।

परहित में अपना दे देने में देर न करें। मगर मुफ्त का, दान का लेने में संकोच करें।

*

सत्यनिष्ठा

डॉ. राजेन्द्रबाबू वकालत करते थे। उनके पास एक निराधार विधवा के विरुद्ध एक अभियोग-पत्र दाखिल किया गया। एक व्यक्ति ने उस विधवा से उसका सारा उत्तराधिकार हथिया लेने के लिए सुबूत के रूप में विविध प्रमाण राजेन्द्रबाबू के सामने प्रस्तुत किया और कहने लगा : "यही सब सुबूत हैं मेरे, अब आप इनके आधार पर एक-दो मुद्दतों में ही यह केस हमारे पक्ष में जितवा दें।"

राजेन्द्रबाबू ने कहा : "आपके सुबूत को देखते हुए आपकी धारणा सच है। वह आदमी मर चुका है, मानता हूँ। यह भी अच्छा है कि तुमने उसकी विधवा से धोखेधड़ी से अंगूठे का निशान भी प्राप्त कर लिया है। तू इस समय मेरा मुवक्किल है। मैं तुझे जीत दिला दूँ तो तू मुझे दो हजार रुपये फीस भी देगा ही जानता हूँ, मगर उस निराधार की रोटी छीनी जाएगी यह सोच मैं यह मुकदमा नहीं ले सकता। मुझे दो-चार

हजार का लोभ नहीं है। मैं तुझे भी यह नेक सलाह देना चाहूँगा कि तू कानून का दुरुपयोग न कर, किसी दुर्बल की दुर्बलता और अबोधता का नाजायज फायदा मत उठा। यदि इसी प्रकार चोरी-बेइमानी से तूने अपार धन जोड़ भी लिया तो तेरे लड़के उसे बर्बाद कर देंगे, लड़कियाँ गलत राह पकड़ लेंगी और तेरा घर अशांति का अड्डा बन जाएगा। अतः तू इतना नीच कार्य न कर। सरकार और कानून तुम्हें धन तो दिला देगें, पर ईश्वरीय कानून तुझे छोड़ेगा नहीं। मेरी एक बात और, बड़े ही गौर से सुन ले। यदि तू मेरी सलाह नहीं मानेगा और दूसरा कोई वकील रखकर उस विधवा का धन हड़प करने का कोई प्रयास करेगा तो उसके बचाव में मैं मुफ्त ही लड़ूँगा और उसे विजय दिलाऊँगा। अच्छा तो यह है कि तू मुफ्त का धन लेने की साजिश आज से छोड़ दे।"

इसका परिणाम यह हुआ कि उस आदमी का दुराग्रह टल गया और उसने सारे सुबूत फाड़कर फेंक दिए।

यदि राजेन्द्रबाबू चाहते तो उनकी विजय सहज थी, मुवक्किल से अच्छी फीस भी मिलती, मगर ईश्वर को दृष्टि के समक्ष रखकर उन्होंने सहज ही सत्य का पक्ष लिया। संभवतः उनकी इसी उच्च मानवीय भावना, सत्यनिष्ठा एवं न्यायपरायणता के सद्‌गुण ने उन्हें भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनने का सुयोग पैदा किया। उनके हृदय में राष्ट्रभक्ति और ईश्वरप्रीति सदा बनी रही।

यदि आपमें सत्यनिष्ठा हो तो आपके लिए सृष्टि में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। प्रत्येक प्रसंग आपके अनुकूल बनता जाएगा, आपको कभी कोई हानि प्रतीत नहीं होगी। सत्यनिष्ठा को कभी पराजित नहीं होना पड़ता।

सत्य के तुल्य कोई तप नहीं।
विद्या के तुल्य कोई धन नहीं।
तृष्णा के तुल्य कोई दुःख नहीं।
त्याग के तुल्य कोई सुख नहीं।
सद्‌गुरु के तुल्य कोई हितैषी नहीं॥

*

इष्टसिद्धि की महिमा

इष्टमंत्र सिद्ध होता है तो अनिष्ट आता ही नहीं। तीव्र प्रारब्ध से आता भी है तो उसका प्रभाव नहीं पड़ता। इष्टमंत्र में जितने अक्षर हैं उतने लाख जप करने से इष्टमंत्र सिद्ध होता है। (विस्तृत विवरण आश्रम की इष्टसिद्धि नामक पुस्तिका में है।) इससे हृदय का बल बढ़ता है। व्यक्ति एकाग्रचित्त बन जाता है।

एक व्यक्ति की मृत्यु हो रही थी। लालजी महाराज वहाँ पहुँचे। रोगी की नौकरी A.M.T.S. की बस (अहमदाबाद की सीटी बस) में थी। वह मिरजापुर रोड़, अहमदाबाद में रहता था। वह लालजी महाराज का परिचित था। वे मिलने गये। वह आदमी खटिया पर पीड़ित होकर कई महीनों से पड़ा था। उसकी शैया के नजदीक वे पहुँचे ही थे कि वह बोल पड़ा : "महाराज! आप मुझे मिलने आये; बहुत अच्छा किया। मगर मुझे ये यमदूत लेने आये हैं। देखो, ये खड़े हैं चारपाई की दाँई ओर।" महाराज वहाँ पहुँचे तो वह बोलता है कि आप इधर आ गये तो वे बाँई ओर आ गये... अब सिरहाने आ गये... अब पैरों की ओर आ गये। आधा घंटा महाराज इधर उधर होते रहे। आखिर वह बोला : "अब तो वे चले गये।"

उस व्यक्ति की अपमृत्यु टल गई; जैसे अजामिल की टल गई थी।

जो इष्टमंत्र जपते हैं; जिनका इष्टमंत्र सिद्ध हो गया है, उनकी हाजरी मात्र से ही अपमृत्यु टल सकती है। यमदूत भी भाग जाते हैं। जो मंत्रजाप करते हैं वे केवल अपना ही कल्याण नहीं करते, जहाँ रहते हैं उस कुटुम्ब, परिवार और वातावरण में भी कुछ अच्छा-भला होने लगता है।

मंत्रजाप मम दृढ़ विश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा॥

*

‘परिप्रश्नेन...’

युधिष्ठिर ने पूछा : “पितामह ! मनुष्य क्योंकर पापात्मा बन जाता है ? वह किस प्रकार धर्माचरण करता है ? किन कारणों से उसे वैराग्य प्राप्त होता है ? और किन साधनों से वह मोक्षभागी बनता है ?”

भीष्म पितामह ने उत्तर दिया : “राजन् ! मनुष्य को सर्वप्रथम शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पाँच विषयों के अनुभव प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् इन पाँचों से किसी एक को प्राप्त कर उसके प्रति वह रागयुक्त अथवा द्वेषयुक्त बनता है। फिर जिसके प्रति राग होता है, उसे पुन: प्राप्त करने का वह प्रयत्न करता है। वह अपनी मनोवांच्छित वस्तु के रूप और गंध को बारम्बार सेवन करने की इच्छा करता है, इसके फल स्वरूप उसके मन में उन विषयों के प्रति राग उत्पन्न हो जाता है और प्रतिकूल विषयों से द्वेष होने लगता है। तत्पश्चात् वह अनुकूल वस्तु के लिए प्रलुब्ध हो उठता है और लोभ के बाद उसके मन पर मोह अपना अधिकार जमा लेता है। लोभ-मोह से अभिभूत और राग-द्वेष से वशीभूत मनुष्य की बुद्धि धर्म के आचरण में प्रवृत्त नहीं होती। किसी न किसी बहाने वह मात्र धर्म के दिखावे को ही अपने आचरण से व्यक्त करता है। कपट पूर्ण रीति से धन कमाने की इच्छा करता है। यदि इसमें उसे सफलता मिल जाय तो वह उसीमें अपनी समग्र बुद्धि लगा देता है। फिर तो वह विद्वानों और सुहृदयों की अवहेलना करते हुए भी पाप ही करता चलता है। अपने रोकनेवालों को भी वह धर्मशास्त्रों के प्रमाणों द्वारा प्रतिपादित न्याययुक्त दृष्टान्तों से चुप करा देता है।

‘अपने छल-प्रपंच से सब कुछ कर लूँगा और सुखी बन जाऊँगा।’ ऐसे शकुनि सिद्धांतवाले, दुष्टबुद्धि दुर्योधन की नीति-रीतिवाले पशुमानव जीते हैं तब तक अशांति और अनर्थ को उत्पन्न करते हैं। मृत्यु के बाद भी अनन्त काल तक आसुरी योनियों में जन्म ग्रहण करते रहते हैं।

वह राग और मोह से उत्पन्न तीन प्रकार के अधर्म करता है । वह मन से पाप की ही बात का चिन्तन करता है । वाणी से पापी दुर्वचन ही बोलता है और क्रिया द्वारा पाप ही आचरण करता है । वह इस लोक में भी सुख नहीं पाता । अंदर की सुख-शान्ति भी प्राप्त नहीं कर पाता । व्यर्थ विलाप, आत्मताड़न, अतिलोभ, वासना और बाह्याडम्बर के कंटकाकीर्ण पथ पर अपने अमूल्य मानव-देह और आयु को विनष्ट कर देता है। ऐसा मनुष्य निगुरे लोगों के नागफाँस से निकलकर अमर आत्मपद पानेवाले साधुस्वभाव के सज्जनों की अवहेलना करता फिरता है। ‘अपने छल-प्रपंच से सब कुछ कर लूँगा और सुखी बन जाऊँगा।’ ऐसे शकुनि सिद्धांतवाले, दुष्टबुद्धि दुर्योधन की नीति-रीतिवाले पशुमानव जीते हैं तब तक अशांति और अनर्थ उत्पन्न करते हैं। मृत्यु के बाद भी अनन्त काल तक आसुरी योनियों में उपद्रव मचाते और उपद्रवों में उत्तप्त पृथ्वी पर अभिशप्त रूप में ये अधम प्राणी वासनाधिक्य के बवंडर में उड़ते हुए तिनके की भाँति कभी पृथ्वी पर तो कभी ब्रह्मांड में तो कभी इतर ब्रह्मांडों में कष्टयातनाओं को मानो भोगने के लिए ही जन्म ग्रहण करते रहते हैं। मानव शरीर का दुरुपयोग करने का दुष्परिणाम देवता उसे दे रहा हो ऐसी निर्दयी यातनायें निगुरे, शठ स्वभाव के लोग भोगते रहते हैं।

अत: हे राजन् ! मनुष्य को नित्य सावधान रहना चाहिए। जब तक कंठ में प्राण है तब तक अपनी आध्यात्मिक उन्नति साधते रहना चाहिए। हजारों बार निष्फल हो, हजारों बार फिसलो तो भी हार न मानो। ऐसे साधक हरि के हृदयहार बन जाते हैं। अब ऐसे धर्मात्मा पुरुषों के लक्षण आप ध्यान से सुनिए।

हे पुत्र ! जो पुरुष अपनी

बुद्धि से रागादि दोषों को पहले ही देख लेता है वह सुख-दुःख के निराकरण में प्रवीण होता है। वह श्रेष्ठ पुरुषों की संगति करता है। सत्पुरुषों की सेवा, सत्संग और सत्कर्मों के अभ्यास से उस पुरुष की बुद्धि परिष्कृत होती है। उसकी बुद्धि धर्म में ही सुख पाती है और उसीका आश्रय ग्रहण करती है। वह पुरुष धर्म से प्राप्त धन में ही मन लगाता है। वह जहाँ गुण देखता है वहाँ उसकी जड़ का सिंचन करता है। ऐसा करने से वह धर्मात्मा बनता है और शुभदायक सन्मित्र प्राप्त करता है।

"हे राजन्! मनुष्य को नित्य सावधान रहना चाहिए। जब तक कंठ में प्राण है तब तक अपनी आध्यात्मिक उन्नति साधते रहना चाहिए। हजारों बार निष्फल हो, हजारों बार फिसलो तो भी हार न मानो। ऐसे साधक हरि के हृदयहार बन जाते हैं।"

हे भारत! उत्तम मित्र और धन के लाभ से तो इस लोक और परलोक में भी आनन्द-प्राप्ति होती है। ऐसे पुरुष उन पाँचों विषयों पर प्रभुत्व जमा लेते हैं, जिसे धर्म का फल माना गया है। हे युधिष्ठिर! वह पुरुष धर्म का फल प्राप्त करके भी हर्ष से उत्फुल्ल नहीं होता। विषयों से तप्त न होकर वह पुरुष विवेक दृष्टि से वैराग्य ग्रहण करता है। बुद्धि रूपी नेत्र के खुल जाने से वह कामोपभोग, रस और गंध में आसक्त नहीं होता और शब्द, स्पर्श एवं रूप में भी उसका चित्त उलझता नहीं। इस दशा में वह सभी कामनाओं से उन्मुक्त हो जाता है। ऐसा पुरुष सत्पुरुषों का संसर्ग करता है और उनके आदेशानुसार अंतःकरण की शुद्धि और मोक्षसिद्धि के लिए यत्न करता है।

सम्पूर्ण विश्व को नाशवान समझ वह मन से सर्वस्व के त्याग का प्रयत्न करता है। तत्पश्चात् शास्त्रसम्मत विधियों से मोक्ष के लिए सचेष्ट बनता है। इस प्रकार क्रमशः वैराग्य की प्राप्ति होने से ध्यान, वेदाध्ययन, सत्त्व, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच, आहारशुद्धि और इन्द्रियनिग्रह द्वारा अंतःकरण शुद्ध करके बाह्याकर्षणों पर विजय प्राप्त कर लेता है। अपने अंतःकरण में निष्काम सुख प्राप्त होते ही उसका अंतःकरण शांत, शीतल होने लगता है और धीरे-धीरे वह इस लोक में ही मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

*

पू. बापू ने एक बार कहा था : "श्री गुलझारीलाल नन्दा यहाँ आश्रम में मिलने आये थे। कुछ समय के लिए वे प्राइम मिनिस्टर रह चुके थे। उन्होंने बड़े आदर और भावयुक्त मुखमुद्रा में कहा : 'बाबाजी! आपकी 'निर्भय नाद' किताब मैंने पढ़ी। आपके दर्शन की बड़ी इच्छा थी। शरीर बहुत कमजोर है, अन्यथा ऐसी इच्छा होती है कि सदा यहाँ आपके चरणों में ही रहा करूँ।'

वे एक सज्जन नेता थे। सात्त्विक जीवन था उनका। लेकिन प्राइम मिनिस्टर पद भोगने के बाद अब कौन-से कोने में वे हैं, लोग नहीं जानते। विवेकानन्द को जैसे रामकृष्ण मिले थे वैसे यदि इन्हें भी कोई रामकृष्ण या पूज्यपाद लीलाशाहजी बापू मिले होते तो ये सज्जन आदमी ब्रह्मवेत्ता हो जाते, पूजे जाते... वे आत्मा का अनुभव करते।"

संग की बड़ी महिमा है।

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की हरे कोटि अपराध॥

*

'राही रुक नहीं सकते...'

सत्य स्वरूप ईश्वर को पाने की तत्परता, भोग-विलास को तिलांजलि, विकारों का दमन और निर्विकार नारायण स्वरूप का दर्शन करनेवाली उस बच्ची की कथा है जिसने न केवल अपने को तारा, अपितु अपने पिता राजपुरोहित परशुरामजी का कुल भी तार दिया।

जयपुर-सिकर के बीच महेन्द्रगढ़ के सरदार शेखावत के राजपुरोहित परशुरामजी की उस बच्ची का नाम था कर्मा, कर्मावती। बचपन में वह ऐसे कर्म करती थी कि उसके कर्म शोभा देते थे। कई लोग कर्म करते हैं तो कर्म उनको थका देते हैं। कर्म में उनको फल की इच्छा होती है। कर्म में कर्त्तापन होता है।

कर्मावती के कर्म में कर्त्तापन नहीं था। ईश्वर के प्रति समर्पणभाव था। जो कुछ कराता है प्रभु! तू ही कराता है। अच्छे काम होते हैं, तो नाथ! तेरी कृपा से ही हम कर पाते हैं। कर्मावती कर्म करती थी, लेकिन कर्त्ताभाव को विलय होने का मौका मिले उस ढंग से करती थी।

कर्मावती तेरह साल की हुई। गाँव में साधु-संत पधारे। उन सत्पुरुषों से गीता का ज्ञान सुना, भगवद्गीता का माहात्म्य सुना। अच्छे-बुरे कर्मों के बन्धन से जीव मनुष्य-लोक में जन्मता है, थोड़ा-सा सुखाभास पाता है परंतु काफी मात्रा में दुःख भोगता है। जीवन के अंत में जिस शरीर से सुख-दुःख भोगता है, वह शरीर तो जल जाता है, लेकिन भीतर सुख पाने का, सुख भोगने का भाव बना रहता है। यह कर्त्ता-भोक्तापन का भाव तब तक बना रहता है, जब तक मन की सीमा से पार परमात्म-स्वरूप का बोध नहीं होता।

साधक अगर एक ही भगवान की मूर्ति या गुरुदेव के चित्र को एकटक निहारते निहारते आंतरयात्रा करे तो 'एक में ही सब है और सब में एक ही है' यह ज्ञान होने में सुविधा रहेगी।

कर्मावती इस प्रकार की कथाएं खूब ध्यान देकर सुना करती थी। वह इतना एकाग्र होकर कथा सुनती कि उसका कथा सुनना बन्दगी हो जाता था।

एकटक निहारते हुए कथा सुनने से मन एकाग्र होता है। कथा सुनने का महा पुण्य तो होता ही है, साथ ही साथ मनन करने का लाभ भी मिल जाता है और निदिध्यासन भी होता रहता है।

कर्मावती आँखों की पलकें कम गिरे इस प्रकार ध्यान से कथा सुनती थी। दूसरे लोग कथा सुनकर थोड़ी देर के बाद कपड़े झाड़कर चल देते और कथा की बात भूल जाते। कर्मावती कथा को भूलती नहीं थी, कथा सुनने के बाद उसका मनन करती थी। मनन करने से उसकी योग्यता बढ़ गई। घर में कुछ अनुकूलता या प्रतिकूलता आती तो वह समझती कि जो आता है वह जाता है। उसको देखनेवाला मेरा राम, मेरा कृष्ण, मेरा आत्मा, मेरे गुरुदेव, मेरा परमात्मा केवल एक है। सुख आयेगा-जायेगा, दुःख आयेगा-जायेगा, मान आयेगा-जायेगा, अपमान आयेगा-जायेगा, पर मैं चैतन्य आत्मा एकरस हूँ, ऐसा उसने कथा में सुना था।

कथा को खूब एकाग्रता से सुनने और बाद में उसे स्मरण करके मनन करने से कर्मावती ने छोटी उम्र में खूब ऊँचाई पा ली। वह बातचीत में और व्यवहार में भी कथा की बातें ला देती थी। फलतः व्यवहार के द्वन्द्व उसके चित्त को मलीन नहीं करते थे। उसका चित्त निर्मलता में, सात्त्विकता में चला जाता था।

मैं तो महेन्द्रगढ़ के उस सरदार खंडेरकर शेखावत को भी धन्यवाद दूँगा। क्योंकि उसके राजपुरोहित हुए थे परशुराम और परशुराम के घर आयी थी कर्मावती जैसी बच्ची।

जिनके घर में भक्त पैदा हो वे माता-पिता तो भाग्यशाली हैं ही, पवित्र हैं, वे जहाँ नौकरी करते हैं वह जगह, वह ऑफिस, वह कुर्सी भी भाग्यशाली है। जिसके वहाँ वे नौकरी करते हैं वह भी भाग्यशाली है कि भक्त के माता-पिता उसके यहाँ आया-जाया करते हैं।

परशुराम कथा की बात भूल भी जाते, कर्मावती याद रखती।

कर्मावती ने घर में एक पूजा की कोठरी बना ली थी। वहाँ संसार की कोई बात नहीं, केवल माला और जप-ध्यान। उसने उस कोठरी को सात्त्विक सुशोभनों से सजाया था। बिना हाथ-पैर धोये, नींद से उठकर बिना स्नान किये उसमें प्रवेश नहीं करती। धूप-दीप-अगरबत्ती से और कभी-कभी ताजे खिले हुए फूलों से कोठरी को पावन बनाया करती, महकाया करती। उसके भजन की
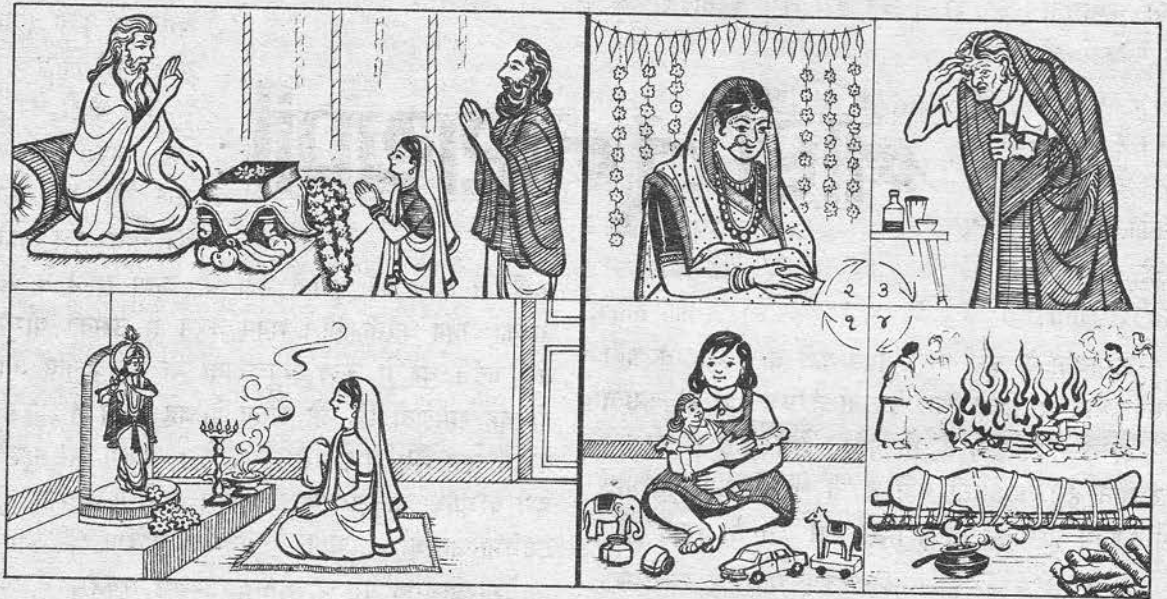
राजपुरोहित परशुराम भी भगवान के भक्त थे। संयमी जीवन था उनका। वे सदाचारी थे, दीन-दु:खी की सेवा किया करते थे। गुरु-दर्शन में रुचि और गुरु-वचन में विश्वास रखनेवाले थे। ऐसे पवित्रात्मा के यहाँ जो संतान पैदा हो, उसका भी तेजस्वी-ओजस्वी होना स्वाभाविक है।

कर्मावती बाप से भी बहुत आगे बढ़ गई। कहावत है कि बाप से बेटा सवाया होना चाहिए। यह तो बेटी सवाई हो गई भक्ति में।

परशुराम कभी कथा सुनने जाते, कभी सरदार के काम-काज में व्यस्त रहते, पर कर्मावती हररोज नियमित रूप से अपनी माँ को लेकर कथा सुनने पहुँच जाती।

कोठरी मानो भगवान का मंदिर ही बन गई थी। वह ध्यान-भजन नहीं करनेवाले निगुरे कुटुम्बियों को नम्रता से समझा-बुझाकर उस कोठरी में नहीं आने देती थी। उसके उस साधना-कुटीर में भगवान की ज्यादा मूर्तियाँ नहीं थीं। वह जानती थी कि अगर ध्यान-भजन में रुचि न हो तो वे मूर्तियाँ बेचारी क्या करेंगी? ध्यान-भजन में सच्ची लगन हो तो एक ही मूर्ति काफी है।

साधक अगर एक ही भगवान की मूर्ति या गुरुदेव के चित्र को एकटक निहारते निहारते आंतरयात्रा करे तो 'एक में ही सब है और सब में एक ही है' यह ज्ञान होने में सुविधा रहेगी। जिसके ध्यान-कक्ष में, अभ्यास-खण्ड में या घर में बहुत से देवी-देवताओं के चित्र हों, मूर्तियाँ

हों तो समझ लेना, उसके चित्त में और जीवन में काफी अनिश्चितता होगी ही। क्योंकि उसका चित्त अनेक में बँट जाता है, एक में पूरा भरोसा नहीं रहता।

जिसके ध्यान-कक्ष में, अभ्यास-खण्ड में या घर में बहुत से देवी-देवताओं के चित्र हों, मूर्तियाँ हों तो समझ लेना, उसके चित्त में और जीवन में काफी अनिश्चितता होगी ही। क्योंकि उसका चित्त अनेक में बँट जाता है, एक में पूरा भरोसा नहीं रहता।

कर्मावती ने साधन-भजन करने का निश्चित नियम बना लिया था। नियम पालने में वह पक्की थी। जब तक नियम पूरा न हो तब तक भोजन नहीं करती। जिसके जीवन में ऐसी दृढ़ता होती है, वह हजारों विघ्न-बाधाओं और मुसीबतों को पैर तले कुचलकर आगे निकल जाता है।

कर्मावती १४ साल की हुई। उस साल चातुर्मास करने के लिए संत पधारे। कर्मावती एक दिन भी कथा सुनना चूकी नहीं। कथा-श्रवण के सार रूप उसके दिल-दिमाग में निश्चय दृढ़ हुआ कि जीवनदाता को पाने के लिए ही यह जीवन मिला है, कोई गड़बड़ करने के लिए नहीं है । परमात्मा को नहीं पाया तो जीवन व्यर्थ है।

न पति अपना है न पत्नी अपनी है, न बाप अपना है न बेटे अपने हैं, न घर अपना है न दुकान अपनी है। अरे, यह शरीर तक अपना नहीं है, तो और की क्या बात करें? शरीर को भी एक दिन छोड़ना पड़ेगा, स्मशान में उसे जलाया जायगा।

कर्मावती के हृदय में जिज्ञासा जगी कि शरीर जल जाने के पहले मेरे हृदय का अज्ञान कैसे जले? मैं अज्ञानी रहकर बूढ़ी हो जाऊं, आखिर में लकड़ी टेकती हुई, रुग्ण अवस्था में अपमान सहती हुई, कराहती हुई बुढ़ियाओं की नाईं मरूँ यह उचित नहीं।

कर्मावती कभी-कभी वृद्धों को, बीमार व्यक्तियों को देखती और मन में वैराग्य लाती कि मैं भी इसी प्रकार बूढ़ी हो जाऊँगी, कमर झुक जाएगी, मुँह पोपला हो जाएगा। आँखों से पानी टपकेगा, दिखाई नहीं देगा, सुनाई नहीं देगा, शरीर शिथिल हो जाएगा। यदि कोई रोग हो जाएगा तो और मुसीबत।

किसीकी मृत्यु होती तो कर्मावती वह देखती, जाती हुई अर्थी को निहारती और अपने मन को समझाती: 'बस! यही है शरीर का आखिरी अंजाम? जवानी में सँभाला नहीं तो बुढ़ापे में दुःख भोग-भोगकर आखिर मरना ही है। राम..! राम..!! राम..!!! मैं ऐसी नहीं बनूँगी। मैं तो बनूँगी भगवान की जोगिन मीराबाई। मैं तो मेरे प्यारे परमात्मा को रिझाऊँगी।'

कर्मावती कभी वैराग्य की अग्नि में अपने को शुद्ध करती है कभी परमात्मा के स्नेह में भाव-विभोर बन जाती है, कभी प्यारे के वियोग में आँसू बहाती है, कभी सूनमून होकर बैठी रहती है। मृत्यु तो किसीके घर होती है और कर्मावती के हृदय के पाप जलने लगते हैं। उसके चित्त में विलासिता की मौत हो जाती है, संसारी तुच्छ आकर्षणों का दम घुट जाता है और हृदय में भगवद्भक्ति का दिया जगमगा उठता है।

किसीकी मृत्यु में भी कर्मावती के हृदय में भक्ति का दिया जगमगाने लगता और किसीकी शादी हो तब भी भक्ति का दिया ही जगमगाता। वह ऐसी भावना करती कि :

मैं ऐसे वर को क्यों वरूँ
जो उपजे और मर जाय।
मैं तो वरूँ मेरे गिरधर गोपाल को
मेरो चूड़लो अमर हो जाय।

मीरा ने इसी भाव को प्रकटाकर, दुहराकर अपने जीवन को धन्य कर लिया था। (क्रमशः)

*

हों तो समझ लेना, उसके चित्त में और जीवन में काफी अनिश्चितता होगी ही। क्योंकि उसका चित्त अनेक में बँट जाता है, एक में पूरा भरोसा नहीं रहता।

जिसके ध्यान-कक्ष में, अभ्यास-खण्ड में या घर में बहुत से देवी-देवताओं के चित्र हों, मूर्तियाँ हों तो समझ लेना, उसके चित्त में और जीवन में काफी अनिश्चितता होगी ही। क्योंकि उसका चित्त अनेक में बँट जाता है, एक में पूरा भरोसा नहीं रहता।

कर्मावती ने साधन-भजन करने का निश्चित नियम बना लिया था। नियम पालने में वह पक्की थी। जब तक नियम पूरा न हो तब तक भोजन नहीं करती। जिसके जीवन में ऐसी दृढ़ता होती है, वह हजारों विघ्न-बाधाओं और मुसीबतों को पैर तले कुचलकर आगे निकल जाता है।

कर्मावती १४ साल की हुई। उस साल चातुर्मास करने के लिए संत पधारे। कर्मावती एक दिन भी कथा सुनना चूकी नहीं। कथा-श्रवण के सार रूप उसके दिल-दिमाग में निश्चय दृढ़ हुआ कि जीवनदाता को पाने के लिए ही यह जीवन मिला है, कोई गड़बड़ करने के लिए नहीं है । परमात्मा को नहीं पाया तो जीवन व्यर्थ है।

न पति अपना है न पत्नी अपनी है, न बाप अपना है न बेटे अपने हैं, न घर अपना है न दुकान अपनी है। अरे, यह शरीर तक अपना नहीं है, तो और की क्या बात करें? शरीर को भी एक दिन छोड़ना पड़ेगा, स्मशान में उसे जलाया जायगा।

कर्मावती के हृदय में जिज्ञासा जगी कि शरीर जल जाने के पहले मेरे हृदय का अज्ञान कैसे जले? मैं अज्ञानी रहकर बूढ़ी हो जाऊं, आखिर में लकड़ी टेकती हुई, रुग्ण अवस्था में अपमान सहती हुई, कराहती हुई बुढ़ियाओं की नाईं मरूँ यह उचित नहीं।

कर्मावती कभी-कभी वृद्धों को, बीमार व्यक्तियों को देखती और मन में वैराग्य लाती कि मैं भी इसी प्रकार बूढ़ी हो जाऊँगी, कमर झुक जाएगी, मुँह पोपला हो जाएगा। आँखों से पानी टपकेगा, दिखाई नहीं देगा, सुनाई नहीं देगा, शरीर शिथिल हो जाएगा। यदि कोई रोग हो जाएगा तो और मुसीबत।

किसीकी मृत्यु होती तो कर्मावती वह देखती, जाती हुई अर्थी को निहारती और अपने मन को समझाती: 'बस! यही है शरीर का आखिरी अंजाम? जवानी में सँभाला नहीं तो बुढ़ापे में दुःख भोग-भोगकर आखिर मरना ही है। राम..! राम..!! राम..!!! मैं ऐसी नहीं बनूँगी। मैं तो बनूँगी भगवान की जोगिन मीराबाई। मैं तो मेरे प्यारे परमात्मा को रिझाऊँगी।'

कर्मावती कभी वैराग्य की अग्नि में अपने को शुद्ध करती है कभी परमात्मा के स्नेह में भाव-विभोर बन जाती है, कभी प्यारे के वियोग में आँसू बहाती है, कभी सूनमून होकर बैठी रहती है। मृत्यु तो किसीके घर होती है और कर्मावती के हृदय के पाप जलने लगते हैं। उसके चित्त में विलासिता की मौत हो जाती है, संसारी तुच्छ आकर्षणों का दम घुट जाता है और हृदय में भगवद्भक्ति का दिया जगमगा उठता है।

किसीकी मृत्यु में भी कर्मावती के हृदय में भक्ति का दिया जगमगाने लगता और किसीकी शादी हो तब भी भक्ति का दिया ही जगमगाता। वह ऐसी भावना करती कि :

मैं ऐसे वर को क्यों वरूँ
जो उपजे और मर जाय।
मैं तो वरूँ मेरे गिरधर गोपाल को
मेरो चूड़लो अमर हो जाय।

मीरा ने इसी भाव को प्रकटाकर, दुहराकर अपने जीवन को धन्य कर लिया था। (क्रमशः)

*

नीति और सदाचार

इस संसार में ऐश्वर्य और आत्मकल्याण सिद्ध करने की कामनावाले मनुष्यों को दिन की निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता – इन छः दोषों का त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि ये दूषण कार्य की सिद्धि में हानिकर हैं इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं है।

विवेकी मनुष्य को सदा दीर्घदृष्टिवान, प्रत्युत्पन्नमतिवान एवं साहसिक बनना चाहिए, आलसी और सुस्त नहीं होना चाहिए।

जो पूजनीय हैं, उनकी पूजा दान, मान तथा सत्कारपूर्वक करना चाहिए। उग्र दण्ड देनेवाला और कटुभाषी कभी भी नहीं बनना चाहिए। कटु भाषण और कठोर दंड से स्त्री और पुत्र भी भड़क उठते हैं। दान और मृदु भाषण से पशु भी वश में हो जाते हैं। जो व्यक्ति शांतिपूर्वक बातें सुने, उसका रहस्य शीघ्र समझ ले, कार्य के रहस्य को समझकर उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करे, उसकी सफलता में बाधक किसी प्रलोभन में न पड़े, वह अपने कार्य को सिद्ध करने में सफल होता है।

किसी कार्य के प्रारंभ होते ही कोई विपत्ति आ पड़े तो उसे दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करें। धैर्य छोड़कर विचलित न बनें। किसीके हृदय को ठेस पहुँचानेवाली बातें न कहें। किसीके विषय में झूठी बातें भी न करें, निरर्थक बातें भी न करें, घृणा और शर्मिन्दगी जगाने वाली बातें भी न करें। पति-पत्नी या पिता-पुत्र के विवादों में किसीका साक्षी भी न बनें। अपने कार्य और विचार को कार्य पूर्ण होने तक गुप्त रखें।

विद्या का फल ज्ञान और विनय है। धन का फल यज्ञ और दान है। बल का फल सज्जन-रक्षा, शूरवीरता का फल शत्रु-पराजय एवं उनसे कर की प्राप्ति है। कुलीनता का फल मन को शांत रखना, इंद्रिय-दमन करना और सरलता का व्यवहार करना है। मान का फल है सभी को अपने जैसा सम्मान देना।

बातचीत के समय दो व्यक्तियों के मध्य खड़ा न रहना। अति सामान्य व्यक्ति भी यदि अपने घर अतिथि रूप में आ जाय तो उसका कुशल-क्षेम पूछ जलपानादि से स्वागत कर यथायोग्य समादर प्रदान करना चाहिए।

समयानुसार सदा हितकर और मिताहार करना चाहिए। अन्न की निंदा नहीं करनी चाहिए। जो भोजन सुलभ हो उसे प्रसाद-भाव से, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

रात्रि के प्रथम और अंतिम दो प्रहरों को छोड़कर द्वितीय और तृतीय प्रहरों में शयन करना चाहिए। रात्रि का प्रथम प्रहर भोजन एवम् मनोरंजन तथा अंतिम प्रहर ध्यान और जप में व्यतीत करना चाहिए।

सत्कार्यों के उपदेशक नन्हें बालक तक की बातें स्वीकार कर तदनुसार कार्य करना चाहिए।

आयु, दान, कौटुम्बिक दोष, मंत्र, मैथुन, औषध, धन, मान और अपमान – इन नौ बातों को गुप्त रखना चाहिए।

रास्ते चलते समय गुरुजन, बलवान, रोगी, शव, राजा, आदरणीय व्यक्ति, व्रतशील व्यक्ति और वाहन को स्वयं हटकर भी मार्ग दे देना चाहिए।

रास्ते चलते हुए खाना नहीं चाहिए। विनष्ट वस्तु या मृत व्यक्ति का शोक नहीं मनाना चाहिए। अपने किए कार्य की स्वयं प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

अपने ऊपर शंकाशील व्यक्ति का सहवास और नीच किस्म के पुरुषों की सेवा का त्याग करना चाहिए। छिपकर अन्य किसीकी बात नहीं सुननी चाहिए।

प्रेम, समीप का निवास, स्तुति, नमस्कार, सेवा, आदर, सरलता, शूरवीरता, दानशीलता, विद्या, बड़ों के आगमन जैसे सुअवसर पर सहर्ष स्वागत करना, सस्मित वार्तालाप, परोपकार एवं स्वच्छ अंतःकरण आदि सद्गुणों से मनुष्य समग्र संसार को वश में कर सकता है।

शिकार, जुआ, परनिंदा, और मद्यपान – इन चार पापों से दूर रहना चाहिए। कपटतापूर्ण व्यवहार, किसीकी आजीविका पर कुठाराघात अथवा किसीके अहित का कभी भी चिंतन नहीं करना चाहिए।

जिस कार्य के करने से तीनों कालों में स्थिर सुख और शुभ कीर्ति प्राप्त होती हो, ऐसे कार्य ही करने चाहिए।

['शुक्रनीति' में से]

*

शैशव और साधना

विद्यार्थी शिविर में पू. बापू का प्रेरक उद्‌बोधन

[दिनांक : १७-१-९१ अहमदाबाद आश्रम]

अपने कर्त्तव्य-पालन में तत्पर रहो। नियम-पालन में चुस्त रहो। अपना स्वभाव मिलनसार बनाओ। आप किसी भी क्षेत्र में जायँ, कॉलेज में जायँ या उद्योग-धंधे में, खेती में, नौकरी में, कहीं भी जायँ; मनुष्यों के साथ सम्पर्क तो रखना ही पड़ेगा। अगर पत्नी अपने स्वभाव को मिलनसार नहीं बनाती तो पति के साथ अनबन होती है। पति पत्नी से रूठ जाता है। चार दिन की जिन्दगी जो कि जीवनदाता से मिलने के लिए मिली है वह एक दूसरे के स्वभाव को अनुकूल होने की योग्यता के अभाव में घर में और बाहर एक दूसरे के साथ लड़ाई-झगड़े में बीतती है।

जिसकी वाणी मीठी है, दूसरे को अनुकूल होने की जिसमें कला है, वह जगजीत होता है।

वाणी ऐसी बोलिये मनवा शीतल होय।
औरन को शीतल करे आप हूँ शीतल होय॥

भगवान श्रीकृष्ण को देखो। दुर्योधन जैसे दुष्ट एवं शकुनि जैसे कपटी के साथ भी हँसते हुए मिलते हैं। श्रीकृष्ण जो कर्तव्य कर्म करना है; उसे यथायोग्य करते हैं। धर्म का पक्ष लेते हैं। अधर्मी को सीख देते हैं, मगर जब वह नहीं मानता तो फिर अर्जुन को तैयार करके उसे अच्छी तरह से सजा दिलाते हैं परन्तु खुद अपना हृदय खराब नहीं होने देते।

चार दिन की जिन्दगी जो कि जीवनदाता से मिलने के लिए मिली है वह एक दूसरे के स्वभाव को अनुकूल होने की योग्यता के अभाव में घर में और बाहर एक दूसरे के साथ लड़ाई-झगड़े में बीतती है।

दुर्योधन भगवान श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं करता फिर भी भगवान युद्धशिविर में भी उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछते हैं - 'कैसे हो दुर्योधन? युद्ध की तैयारी तो कर रहे हो; मगर अब भी समझ जाओ।'

दुर्योधन उनकी एक नहीं मानता फिर भी उनका चित्त उद्विग्न नहीं होता। उसको ठिकाने तो लगवा देते हैं; मगर फिर भी उनके चित्त में द्वेष नहीं है। श्रीकृष्ण का स्वभाव मिलनसार है। तुम्हारे जीवन में, व्यवहार में अपना स्वभाव मिलनसार बनाओ। जो कुछ भी काम करना हो तो अपनी कार्यशक्ति का विचार करके ही उस काम को उठाओ। एक बार काम उठाया फिर उसमें लगे रहो। धीरज, सातत्य और दृढ़ मनोबल से कार्य करने की क्षमता जुटाओ। एक बार असफल हो जाओ फिर भी हार मत मानो। एक बार और आजमाओ। अवश्य सफलता मिलेगी।

भोजन करो तो चबा-चबाकर, खूब प्रेमपूर्वक अपने परमात्मा को अर्पण करते हुए, दिल में ही बैठे हुए देवेश्वर को प्यार करते हुए भोजन करो। हँसो तो भी ईमानदारी से हँसो। कभी एकान्त में बैठकर रोओ कि 'हे परमात्मा! प्रह्लाद को तू ग्यारह साल की उम्र में मिला था, ध्रुव को पाँच साल की उम्र में मिला था और मैं इतना बहिर्मुख हो गया कि तुझे मिलने के लिए मेरे मन में भाव ही नहीं जागता।' अपने हृदय में परमात्म-दर्शन के लिए भाव जगाओ।

स्वामी रामतीर्थ जब रामतीर्थ नहीं बने थे, तीर्थराम थे तब की बात है। कॉलेज में पढ़ते थे, कुलपति ने उन्हें बुलाकर कहा : "तुम इतने

बुद्धिमान हो। तुम सुबह उठकर ध्यान करते हो इससे तुम्हारी बुद्धि विलक्षण है। ऐसी तुम्हारी तेजस्वी बुद्धि है तो युरोप चले जाओ और एल. एल. डी. की डिग्री पाकर आओ। ब्रिटिश शासन में तुम्हें अच्छे वेतनवाली नौकरी मिलेगी।"

तब तीर्थराम कहते हैं: "भगवान ने मुझे बुद्धि दी है तो क्या इन गोरों को बेचकर मैं गुलाम बनूँ? भगवान ने मुझे बुद्धि दी है तो चार पैसे की नौकरी करके जिन्दगी बरबाद करूँ। बुद्धि दी है तो उसका सदुपयोग करके बुद्धिदाता का साक्षात्कार न करूँ?"

एक बार काम उठाया फिर उसमें लगे रहो। धीरज, सातत्य और दृढ़ मनोबल से कार्य करने की क्षमता जुटाओ। एक बार असफल हो जाओ फिर भी हार मत मानो। एक बार और आजमाओ। अवश्य सफलता मिलेगी।

तीर्थराम ने प्रोफेसर की नौकरी कुछ साल करके विद्यार्थियों में उन्नत विचार दिये। फिर नौकरी छोड़कर अपने अपमें ही गोता लगाकर एक ही साल में आत्मसाक्षात्कार किया। तीर्थराम में से स्वामी रामतीर्थ प्रगटे।

अमेरिका में जब प्रवचन दे रहे थे तब उनका प्रवचन सुनने के लिए उस समय का अमेरिका का राष्ट्रपति रुझवेल्ट सामने से दर्शन करने आया और उसने लोगों से कहा :

'स्वामी रामतीर्थ तो बस, ईसा हैं। मैंने सुना था कि भारत में, हिमालय में कितने ही ईसा जैसे महापुरुष रहते हैं, मगर ऐसे इन फरिश्ते, औलिये के दर्शन करता हूँ तब मुझे लगता है कि राष्ट्रपति पद में वह सुख नहीं जो इन महापुरुष के दर्शन से मुझे आज प्राप्त हुआ है।"

"इन फरिश्ते, औलिये के दर्शन करता हूँ तब मुझे लगता है कि राष्ट्रपति पद में वह सुख नहीं जो इन महापुरुष के दर्शन से मुझे आज प्राप्त हुआ है।"

*

साहसिक लड़का

एक लड़का काशी में हरिश्चन्द्र हाइस्कूल में पढ़ता था। उसका गाँव काशी से आठ मील दूर था। वह रोजाना वहाँसे पैदल चलकर आता, बीच में जो गंगा नदी बहती है उसे पार करता और फिर विद्यालय पहुँचता।

उस जमाने में गंगा पार करने के लिए नाववाले को दो पैसे देने पड़ते थे। दो पैसे आने के और दो पैसे जाने के, कुल चार पैसे याने पुराना एक आना। महीने में करीब दो रुपये हुए। जब सोने के एक तोले का भाव रुपया सौ से भी नीचे था तब के दो रुपये। आज के तो पाँच-पच्चीस रुपये हो जाय।

उस लड़के ने अपने माँ-बाप पर अतिरिक्त बोझा न पड़े इसलिए एक भी पैसे की माँग नहीं की। उसने तैरना सीख लिया। गर्मी हो, बारिश हो कि ठण्डी हो, गंगा पार करके हाइस्कूल में जाना उसका क्रम हो गया। ऐसा करते उसे कितने ही महीने गुजर गये।

एक बार पौष मास की ठण्डी में वह लड़का सुबह की स्कूल भरने के लिए गंगा में कूदा। तैरते तैरते मझधार में आया। एक नाव में कुछ यात्री नदी पार कर रहे थे। उन्होंने देखा कि छोटा-सा लड़का अभी डूब मरेगा। वे उसके पास नाव ले गये और हाथ पकड़कर उसे नाव में खींच लिया। लड़के के मुख पर घबराहट या चिन्ता का कोई चिन्ह नहीं था। सब लोग दंग रह गये कि इतना छोटा है और ईतना साहसी! वे बोले :

"तू अभी डूब मरता तो? ऐसा साहस नहीं करना चाहिए।"

तब लड़का बोला : "साहस तो होना ही चाहिए। जीवन में विघ्न-बाधाएं आयेगी, उन्हें कुचलने के लिए साहस तो चाहिए ही। अगर अभी से साहस नहीं जुटाया तो जीवन में बड़े-बड़े कार्य कैसे कर पायेंगे?"

लोगों ने पूछा : "इस समय तैरने क्यों गिरा? दोपहर को नहाने आता?"

लड़का बोलता है : "में नहाने के लिए नदी में नहीं गिरा हूँ। मैं तो स्कूल जा रहा हूँ।"

"नाव में बैठकर जाता?"

"रोज के चार पैसे आने-जाने के लगते हैं। मेरे गरीब माँ-बाप के ऊपर मुझे बोझा नहीं बनना है। मुझे तो अपने पैरों पर खड़े होना है। मेरा खर्च बढ़े तो मेरे माँ-बाप की चिन्ता बढ़े। उन्हें घर चलाना मुश्किल हो जाय।"

"मैं नहाने के लिए नदी में नहीं गिरा हूँ। मैं तो स्कूल जा रहा हूँ।"

लोग उस लड़के को आदर से देखते ही रह गये। वही साहसी लड़का आगे चलकर भारत का प्रधान मंत्री बना। वह लड़का कौन था, पता है? वह था लालबहादुर शास्त्री। शास्त्रीजी उस पद पर भी सच्चाई, साहस, सरलता, ईमानदारी, सादगी देशप्रेम आदि सद्गुण और सदाचार के मूर्तिमन्त स्वरूप थे। ऐसे महापुरुष भले फिर थोड़ा-सा समय ही राज्य करें पर एक अनोखा प्रभाव छोड़ जाते हैं जनमानस पर।

*

बुद्धि को तेजस्वी बनाने के लिए प्रतिदिन प्रातःकाल में सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए, प्रार्थना करनी चाहिए, जीवन तेजस्वी बनाने के लिए संकल्प करना चाहिए। बिना द्रव्य या वस्तु के भाव नहीं बनता। इसलिए जल-पुष्प मिले तो इनसे, जल न मिले तो रेत से ही सूर्य को अर्घ्य दो। एक पुष्प या पत्र देकर प्रणाम करो। संकल्प तब बनता है जब वस्तु साथ में होती है और संकल्प के बिना कर्म लाभप्रद नहीं होता। यह धर्मशास्त्र का पक्का नियम है।

*

भगवन्नाम के जप-ध्यान का नियम रखना चाहिए। विद्यार्थी अगर त्रिकाल-सन्ध्या करने का नियम रख ले तो कुछ ही समय में उसकी अच्छी आदतों का विकास होगा और बुरी आदतें क्षीण होने लगेंगी। उसे ऐसी पढ़ाई पढ़ना चाहिए कि जीवन में धैर्य, शान्ति, मिलनसार स्वभाव, कार्य में तत्परता, इमानदारी, निर्भयता और आध्यात्मिक तेज बढ़े। सब छोड़कर मरना पड़े इसके पहले जिसका सब कुछ है, उस सर्वेश्वर की मुलाकात हो जाए।

श्रीगुरुगीता का पाठ करने से असाध्य रोगों में लाभ

अकालमृत्युहन्त्री च सर्वसंकटनाशिनी।
यक्षराक्षसभूतादि चोरव्याघ्रविघातिनी॥

'गुरुगीता अकाल मृत्यु को रोकती है, सब संकटों का नाश करती है, यक्ष, राक्षस, भूत, चोर और शेर आदि का घात करती है।'

सर्वोपद्रवकुष्ठादि दुष्टदोषनिवारिणी।
यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद् भवेत्।

'गुरुगीता सब प्रकार के उपद्रवों, कुष्ठ आदि दुष्ट रोगों एवं दोषों का निवारण करनेवाली है। श्री गुरुदेव के सांनिध्य से जो फल मिलता है वह फल इस गुरुगीता के पाठ करने से मिलता है।'

महाव्याधिहरासर्वविभूतेः सिद्धिदा भवेत्।
अथवा मोहने वश्ये स्वयमेव जपेत्सदा॥

'इस गुरुगीता का पाठ करने से महाव्याधि दूर होती है, सर्व ऐश्वर्य और सिद्धियों की प्राप्ति होती है। मोहन में अथवा वशीकरण में इसका पाठ स्वयं करना चाहिये।'

अत्यंत श्रद्धापूर्वक किये हुए मंत्रजप एवं पाठ तुरन्त ही फल देते हैं।

पानी पीने के बारे में कुछ बातें

हिचकी, सांस की तकलीफ, बुखार, सर्दी, ज्यादा मात्रा में घी खाया हो, गले की तकलीफ, करवट के दर्द आदि में गर्म पानी पीने से लाभ होता है।

(चरक संहिता)

सामान्यतया गर्म पानी से आशय है कि पानी को उबालकर, छानकर भर लेना। परंतु ऐसा पानी ५-६ घंटों में पड़े-पड़े भारी हो जाता है। अतः इंधन एवं समय की बचत के लिए व उपरोक्त रोगों में लाभ हो इस दृष्टि से आवश्यकतानुसार एक या आधा गिलास पानी आप सह सकें उतना गर्म करके पीना चाहिये। इससे जठर की उष्णता बढ़ेगी और उपरोक्त रोगों में लाभ होगा।

कुछ रोगों में अत्यंत ही अल्प मात्रा में जल लेना चाहिये। जैसे कि शरीर कमजोर पड़ जाना, पुरानी और नई सर्दी, पाचन-शक्ति का मंद पड़ना, प्लीहा बढ़ना आदि रोगों में पानी अत्यल्प मात्रा में लेना चाहिये।

अंशुदक

जिस जल पर दिन में सूर्य के और रात्रि में चन्द्र के किरण पड़ते हों उस जल को अंशुदक कहते हैं। यह जल स्निग्ध और तीनों दोषों का निवारक है। ऐसा जल वर्षा ऋतु के पश्चात् शरदऋतु में पीना चाहिये।

(भावप्रकाश-पूर्वखण्ड)

यह जल स्निग्ध होने से शरीर के जिन-जिन भागों में चिकनाई की आवश्यकता है जैसे कि आंतें, जोड़ों आदि में, वहाँ आवश्यकतानुसार चिकनाई पहुंचाता है।

प्रातःकाल पानी पीने से ये रोग मिटते हैं

बवासीर, सूजन, संग्रहणी, जीर्ण बुखार, बुढ़ापा, चमड़ी के रोग, गले, पेट व कमर पर बढ़ी हुई चर्बी, पेशाब की मात्रा में कमी, अति-रक्तसार, सर, कमर दुखना और नेत्ररोगों में रोजाना प्रातः ३ से ६ बजे के बीच पानी पीने से लाभ होता है।

(भावप्रकाश-पूर्वखण्ड)

इस प्रकार प्रातःकाल जल्दी उठकर पानी पीने से आयुष्य बढ़ती है, रोगों का नाश होता है, एवं यह एक

उत्तम औषधि के रूप में कार्य करता है। इसीलिए उषःपान को अमृतपान भी कहा है।

नाक के बाल कभी तोड़ना नहीं चाहिये

नाक के बालों को कभी भी खींचकर तोड़ना नहीं चाहिये। इससे नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है।

(भावप्रकाश-पूर्वखण्ड)

बहुत-से लोगों को नाक खुरचने की गंदी आदत होती है। इससे नाक में जमे हुए मैल के साथ नाक के बाल भी निकल आते हैं। फलस्वरूप दृष्टि मन्द पड़ जाती है।

तुतलापन

जो व्यक्ति अटक-अटककर बोलते हैं, बीच में कुछ समय तक अटके रह जाते हैं, वे निम्न प्रयोग से लाभ उठाएं :

(१) बारीक भुनी हुई फिटकरी मुख में रखकर सो जाया करें। एक मास के निरन्तर सेवन से तुतलापन दूर हो जायगा।

(२) हकलाते और तुतलाते बच्चे आँवला चबाएँ तो तुतलापन मिटता है। जीभ पतली होकर बोली साफ होने लगती है।

दर्द मात्र की औषधि

(१) सोड़ा बाई कार्ब तीन ग्राम, फिटकरी सफेद कच्ची तीन ग्राम। दोनों को बारीक पीस लें। यह एक मात्रा है। दवा फांककर ऊपर से गर्म पानी पी लें। एक मात्रा से सर्व प्रकार के दर्द भाग जाते हैं।

(१) कच्ची फिटकरी ३० ग्राम, स्वर्ण गेरू १० ग्राम। दोनों को पीसकर कपड़े से छानकर आधा ग्राम से एक ग्राम तक दूध अथवा गर्म पानी के साथ लें। इससे सिर आदि स्थानों में होनेवाले सभी दर्द शान्त हो जाते हैं।

दस्त बन्द करने की दवा

(१) जायफल पानी में पीसकर दिन में तीन बार पिलाने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

(२) रोगी की नाभि में बड़ का दूध भर दो। दस्त बन्द हो जायेंगे।

नपुंसकता

मालकंगनी का तेल ४० ग्राम, शुद्ध घी ८० ग्राम, शुद्ध शहद १२० ग्राम।

उपर्युक्त वस्तुओं को मिलाकर एक काँच के बर्तन में रख लें। प्रातः सायं ६ ग्राम दवा के सेवन से नपुंसकता का रोग दूर होता है। गाय का दूध अधिक मात्रा में पियें। ४० दिन तक यह दवा सेवन करें।

नारी के अनेक रोगों पर एक दवा

आक की जड़ छाया में सुखाकर एवं बारीक पीसकर सुरक्षित रखें। इसकी मात्रा दो से चार ग्राम तक है। इसके सेवन से मासिक का खुलकर आना, दर्द से आना, पूरी मात्रा में न आना अथवा बिल्कुल न आना आदि शिकायतें दूर हो जाती हैं। मन्दाग्नि नष्ट होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। वायु-गोला, कटि-पीड़ा दूर हो शरीर में स्फूर्ति आती है।

गर्भस्थापक

(१) रात को किसी मिट्टी के बर्तन में २५ ग्राम अजवायन, २५ ग्राम मिसरी, २५ ग्राम पानी में डूबाकर रखें। सुबह उसे ठण्डाई की नाई पीसकर पियें।

भोजन में मुंग की दाल, बिना नमक की रोटी खाएं। यह प्रयोग मासिक धर्म के पहले दिन से लेकर आठवें दिन तक करना चाहिए। इस प्रयोग से जरूर गर्भ धारण होगा।

(२) शिवलिंगी के ९ बीज रोज, मासिक धर्म के बाद सतत चार दिन तक सेवन करने से गर्भ धारण होगा।

एक बार के इस प्रयोग से अगर सफलता नहीं मिलती है तो यह प्रयोग ३-४ बार करने से अवश्य इच्छा पूर्ण होगी।

गर्भरक्षा

जिस स्त्री को बार-बार गर्भपात हो जाता हो उसकी

कमर में धतूरे की जड़ का चार उंगल का टुकड़ा बाँध दें। इससे गर्भपात नहीं होगा। जब नौ मास पूर्ण हो जाएँ तब जड़ को खोल दें।

गर्भरोधक

मासिक धर्म के पश्चात् जब स्त्री स्नान कर चुके तब एरण्डा के बीज की गिरी छीलकर तीन गिरी निगलने से तीन वर्ष तक गर्भ नहीं ठहरेगा।

ता. क. : तीन से अधिक सेवन न करें। जब सन्तान की इच्छा हो तब बीज न खाएँ। एक वर्ष पश्चात् गर्भ धारण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

सिरदर्द

सिरदर्द होने पर दोनों हाथों की कोहनी के ऊपर कपड़े की चिन्दी, रीबिन या मुलायम रस्सी से कसकर बाँध देना चाहिए। इससे पाँच सात मिनट में ही सिरदर्द चला जाएगा। कोहनी पर इतने जोर से बाँधना चाहिए कि रोगी को हाथ में अत्यन्त दर्द मालूम हो। सात मिनट के बाद रस्सी खोल देना चाहिए। आवश्यकता हो तो दिन में फिर एक बार बाँधना चाहिए। सिरदर्द में चमत्कारिक आराम हो जाता है।

*

(पृष्ठ १२ से जारी...)

आँखों से हर्षाश्रु उमड़े चले। उन्होंने अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए मुक्तकंठ से कहा :

"आज मुझे मेरी 'भक्तमाल' की माला का सुमेरु मिल गया। आज मेरा जीवन धन्य हो गया।"

श्रीकृष्ण ने भी संतों के प्रति अपने भावपूर्ण उद्‌गार प्रकट किये हैं :

मैं संतों के पीछे जाऊं जहाँ जहाँ संत सिधारे।
चरनन रज निज अंग लगाऊं शोधूँ गात हमारे ॥
ऊधो मोहिं संत सदा अति प्यारे ॥

भागवत में भगवान ने कहा है :

"मैं ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी संतों के पीछे-पीछे घूमता हूँ। कहीं उनकी नजर मुझे मिल जाय... उनके चरणों की लिपटी हुई धूल मुझे छू जाय।"

श्रीकृष्ण वसुदेव के यज्ञ में साधु पुरुषों के सेवा-सत्कार में संलग्न थे। वे जब एक त्रिकालज्ञानी संत के चरण धोने लगे तो संत कहने लगे : "आप यह क्या करते हैं?" तब श्रीकृष्ण ने कहा :

"पचासों वर्ष की निष्काम भक्ति से भी हृदय का अज्ञान दूर नहीं होता है। हृदय भावना से तो भरता है, लेकिन हृदय का आवरण भंग नहीं होता। तुम्हारे जैसे ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुषों के एक मुहूर्त के सत्समागम से हृदय का अज्ञान दूर हो जाता है। इसलिए मुझे चरण धोने दो।"

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वांग्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, जल, नभ, वायु, वाणी और मन के अधिष्ठातृ देव की उपासना करने पर भी पाप का पूरा-पूरा नाश नहीं होता क्योंकि उनकी उपासना से भेदबुद्धि नष्ट न होकर और भी बढ़ती चलती है। लेकिन घड़ी दो घड़ी भी यदि ज्ञानी महापुरुषों की सेवा की जाए तो वे ज्ञानी महापुरुष हमारे सारे पाप-तापों को मिटा देते हैं, क्योंकि वे भेद-बुद्धि के विनाशक हैं।

[श्रीमद्‌भागवत : १०/८४/१२]

हे मित्र सुख क्यों चाहता, तू आप सुख भण्डार है। सुख लेश तेरे से सुखी, सब हो रहा संसार है॥
सुख-चाह से तू स्वस्थ भी, अस्वस्थ है बीमार है। सुख चाह भाई! छोड़ सुखियों मांहि तू सरदार है॥
घर मांहि सुख जैसा मिले, बाहर नहीं वैसा मिले। बाहर फिरे सुख ढूंढता, सुख इसलिये मिलता नहीं॥
बाहर मती फिर रे सखे! सुख आप में ही ढूंढ रे। होगा तुरत ही तू सुखी, मत जानकर बन मूढ़ रे॥

गुरुगीता-पाठ और त्रिकालसन्ध्या-नियमों का प्रभाव

मैं आज से दो-ढाई वर्ष पूर्व संत श्री आसारामजी बापू के श्रीचरणों में आया तब से मुझे अनेक अनुभव हुए। मैंने अच्छा-खासा जीवन-परिवर्तन महसूस किया। मैंने अखण्डानंद आयुर्वेदिक कॉलेज में पाँच साल अभ्यास किया। परीक्षा-काल में अन्य छात्रों की भाँति मैं भी नकल करते हुए परीक्षाएँ उत्तीर्ण करता रहा परन्तु जब से मैं पूज्य बापू के श्रीचरणों में आया तब से बिना

किसी नकल के परीक्षाएं उत्तीर्ण करता रहा और अंतिम वर्ष में तो प्रथम श्रेणी से सफलता हासिल की।

जनवरी '९१ के उत्तरायण ध्यान-योग शिविर में पूज्य बापू से मंत्र-दीक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। अंतिम दो महीनों में मैंने दो विलक्षण अनुभव किये।

पूज्य बापू प्रत्येक साधक को त्रिकाल सन्ध्या और श्रीगुरुगीता का पाठ करते रहने का विशेष आग्रह रखते हैं। यह नियम अखण्ड रीतिसे पालन करने वाले को आजीविका की चिंता नहीं रहती। मैं बापू के इन वचनों को आदरपूर्वक ग्रहण करके चलता रहा।

दो महीने पहले सरकारी वैद्यों की रिक्त जगहें पूर्ति करने के लिए अहमदाबाद में 'इन्टरव्यू' के लिए बुलाया गया। अब तक इस पद के लिए पचीस-तीस हजार रिश्वत देना आवश्यक माना जाता था। इस बार यह राशि बढ़कर पचास से सत्तर हजार तक पहुँच चुकी थी। मैं नित्यप्रति पूज्य बापू के आदेशानुसार गुरुमंत्र और श्रीगुरुगीता का पाठ तथा त्रिकाल-सन्ध्या नियमित रूप से करता रहा, 'इन्टरव्यू' के दिन भी इस नियम का चुस्ती से पालन किया। 'इन्टरव्यू' के समय भी मन में गुरुमंत्र का जाप चलता रहा। 'इन्टरव्यू' लेनेवाले अधिकारी पर मेरे इस गुरुमंत्र का ऐसा तो प्रभाव पड़ा कि एक भी दमड़ी दिए बिना एवम् किसी भी प्रकार की सिफारिश किये-कराये बिना मुझे नौकरी प्राप्त हो गयी। मेरिट-सूची में मुझे दूसरा स्थान प्राप्त हुआ।

आयुर्वेद में एम. डी. होने के लिए प्रवेश-परीक्षा का आयोजन हुआ करता है। इस परीक्षा में भी श्रीगुरुगीता के पाठ तथा १०८ श्री आसारामायण-पाठ तथा गुरुमंत्र-जाप की सहायता से मैं सफल हुआ।

निश्चित ही, सच्चे सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं मंत्रदीक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् गुरु-आज्ञानुसार प्रचालित सत्पात्र साधक को नौकरी-धंधे की चिंता नहीं रहती।

सचमुच गुरु हैं दीनदयाल,
सहज ही कर देते हैं निहाल।

तथा

एक सौ आठ जो पाठ करेंगे,
उनके सारे काज सरेंगे।

'श्रीआसारामायण' की इन पंक्तियों को मैंने अपने जीवन में घटते हुए देखा और अनुभव किया।

— वैद्य विरल वी. शाह
३३, ज्ञानदा सोसायटी, जीवराज पार्क, अहमदाबाद-५१

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद सद्गुरुदेव संत श्री आसारामजी महाराज के प्रत्यक्ष या परोक्ष सांनिध्य में जिन साधक, भक्त भाई-बहनों को कुछ विशेष आध्यात्मिक अनुभव हुए हों वे भाग्यवंत भाई-बहन अपना वह अनुभव सचोट, सारगर्भित एवं मर्यादित शब्दों में, स्पष्ट हस्ताक्षरों में लिखकर हमें भेज सकते हैं। यथा योग्य सुविधा होने पर ये अनुभव 'ऋषि प्रसाद' में प्रकाशित किये जाएंगे।

अनुभव भेजने का पता : 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय, श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५।

लेकिन यहाँ तो गूंगा अमृत पीता है... नहीं नहीं... ऐसा भी नहीं। हरिरस-अमृत से पाप नाश होते हैं जबकि स्वर्ग के अमृत से तो पुण्यनाश होता है। उसे अमृत कैसे कहा जा सकता है? अतः हे लेखनी! सबसे भली चुप...

समझदार साधक तेरी तोतली भाषा पढ़कर शायद चुप हो जाएंगे... अन्तर में गोता मारेंगे... और भीतर गुरुप्रसाद का स्मरण करेंगे... बाकी तो हे कलम! कोई क्या जाने...?

शत-शत प्रणाम हों उन निष्काम गुरुभक्तों को और लाख-लाख वन्दन हों उन लाखों दिलों में हरि का स्नेह भरनेवाले सद्गुरु को!! गुरु और गुरुभक्तों की जय...

गुरुपूर्णिमा से चातुर्मास का प्रारंभ होता है। चातुर्मास में साधकों के लिए जप, अनुष्ठान, मौन, ध्यानाभ्यास एवं सत्संग विशेष लाभप्रद होता है। पूज्य श्री गुरुदेव गुरुपूर्णिमा के बाद कुछ दिन अहमदाबाद के आश्रम में बिराजे। बाद में एकान्तवास के लिए पंचेड़ (रतलाम) के आश्रम में पधारे। इन दिनों में पंचेड़ आश्रम का वातावरण साधना के लिए विशेष उपयुक्त रहता है।

१५ से १८ अगस्त

पंचेड़ आश्रम में आमजनता के लिए सत्संग समारोह का आयोजन किया गया। पंचेड़ एवं आसपास के गाँव तथा शहर – रतलाम, जावरा, मन्दसौर, उज्जैन, इन्दौर आदि मध्यप्रदेश के शहर एवं राजस्थान के इलाकों से बड़ी भारी संख्या में श्रद्धालुओं ने सम्मिलित होकर परमात्मरस में सराबोर कर देने वाले पूज्यश्री की पावन मधुर अमृतवाणी का लाभ उठाया।

रक्षाबन्धन और जन्माष्टमी

दिनांक २५ के दिन पूज्यश्री सुरत के आश्रम में पधारे। हर साल रक्षाबन्धन एवं जन्माष्टमी के उत्सव सुरत के आश्रम में बड़ी धूमधाम से, बड़े आनन्द-उल्लास के साथ मनाये जाते हैं। सुरत जिल्ले के एवं देश के विभिन्न प्रांतों के लोग इस स्वर्ण अवसर का लाभ उठाया करते हैं। इस बार भी इन उत्सवों में पूज्यश्री का पावन सांनिध्य प्राप्त करने का सौभाग्य सुरत आश्रम को मिला है।

*

- किसी भी मास से 'ऋषि प्रसाद' के सदस्य बननेवालों को भी शुल्क जुलाई से जुलाई (गुरुपूर्णिमा से गुरुपूर्णिमा) तक का देना होगा। पूर्व प्रकाशित अंक स्टॉक में होने पर ही प्राप्त हो सकेंगे।
- 'ऋषि प्रसाद' हर दूसरे मास की नौ तारीख तक प्रकाशित होता है। किन्हीं कारणों से अंक प्राप्त न हो सके तो स्थानीय डाकघर में पूछताछ करने के बाद हमें सूचित करें। अंक स्टॉक में होने पर ही भेजा जा सकेगा।
- 'ऋषि प्रसाद' मेगजीन को अधिक आकर्षक एवं मोहक बनाने हेतु आपके सुझावों का स्वागत है।
- पत्र-व्यवहार हेतु अपना पूरा नाम, पूरा पता, सदस्य क्रमांक, एजेन्ट कोड आदि अवश्य लिखें।
- पत्र-व्यवहार का पता : 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय, श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५.

Registered with the Registrar of Newspaper for India Under No.

हाडौती क्षेत्र, चर्मण्यवती नगरी, कोटा में पूज्य गुरुदेव की पावन अमृतवाणी की वर्षा में अभूतपूर्व विराट जनमेदनी...

प्रभातफेरी घूमती फिरती अपने मोहल्ले में आती है तब घर-घर में से बालिकाएँ तथा महिलाएं पूज्य गुरुदेव की आरती उतारने के लिए अपनी अपनी पूजा की थाली सजाकर निकल पड़ती हैं । (उधना में)

गाँव-गाँव, गली-गली में हरिगुरु-नाम की धूम मचाकर उसी आनन्द की मस्ती में आश्रम में प्रवेश करते भक्तगण । कोई थकान नहीं अपितु उत्साह, उल्हास एवं कृतकृत्यता के भाव... । (सुरत आश्रम)

धनभागी है वह दूधवाला जिसे सुबह सुबह गुरुभक्तों के दर्शन हो जाते हैं । आज तो उसका पूरा दिन आनन्द में जाएगा । गुरुभक्तों के दर्शन से बढ़कर शुभ शकुन और क्या होगा ?

गाँव-गाँव और घर-घर में सत्संग... विडियो सत्संग में तन्मय साधक गण... । (प्रतापगढ़)